नागार्जुन के उपन्यासों में वर्ग-द्वंद्व

एम. फिल. उपाधि हेतु प्रस्तुत
लघु-शोध प्रबंध
मदुरै कामराज विश्वविद्यालय, मदुरै

२००६ - २००७

निदेशक
डॉ॰ दिनेश कुमार वर्मा
हिन्दी विभागाध्यक्ष रंगापारा महाविद्यालय
शाणिनपुर, असम

शोधार्थी
उदय भान भगत
क्रमांक- A7A6672316

नागार्जुन के उपन्यासों में वर्ग-चेतना

एम. फिल. उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु-शोध प्रबंध
मदुरै कामराज विश्वविद्यालय, मदुरै
२००६ - २००७

निर्देशक
डॉ॰ दिनेश कुमार वर्मा
हिन्दी विभागाध्यक्ष, रंगापारा महाविद्यालय
शोणितपुर, असम

शोधार्थी
उदय भान भगत
क्रमांक- A7A6672316

१९११ - १९९८

MADURAI KAMARAJ UNIVERSITY

DIRECTORATE OF DISTANCE EDUCATION

M.Phil. (DLP) DISSERTATION TOPIC APPROVAL

Department : Hindi

Name of the Student : Uday Bhan Bhagat

Enrolment Number : A7A 667271C

Address : Vill & P.O. Amtola, Via Hojai,
Dist. Nagaon - Assam - 782435

Topic Approved for Dissertation : नागार्जुन के उपन्यासों में वर्ग-चेतना

Name and Address of the Guide : Dr. Dinesh Kumar Verma, Rangapara College, Sonitpur

You are expected to contact the guide as early as possible and start preparing your dissertation.

Head of the Department

DECLARATION

I hereby declare that the research work for M. Phil. Degree on **"Nagarjuna Ke Upanyason Mein Varg-Chetna"** is my original work and that it has not previously formed the basis for the award of any Degree, Diploma, Associateship, Fellowship or other similar title.

Uday Bhan Bhagat
23-6-08

Signature of the Candidate

CERTIFICATE

*This is to certify that the dessertation "**Nagarjuna Ke Upanyason Mein Varg-Chetna**" submitted for the degree of M.Phil by **Uday Bhan Bhagat** is a record research work done by him during the course of research from 2006-2007.*

The dessertation has not previously formed basis for the award of any degree, diploma, fellowship, Associateship or other similar title of the candidate. The thesis represents entirely an independent work on the part of the candidate, but for the general guidance offered by me.

Station : Tezpur (Assam)

Date : 23-6-2008

(Dinesh Kumar Verma)

Supervisor

Dr. Dinesh Kr. Verma
Rangapara College, Tezpur

संकेत सूची

प्रो॰	:	प्रोफेसर
प्रा॰ लि॰	:	प्राइवेट लिमिटेड
ई॰	:	ईस्वी सन्
वि॰ सं॰	:	विक्रम संवत्
पृ॰	:	पृष्ठ
सं॰	:	सम्पादक
पृ॰ सं॰	:	पृष्ठ संख्या
डॉ॰	:	डॉक्टर
प्र॰ सं॰	:	प्रथम संस्करण
आ॰	:	आचार्य
पं॰	:	पंडित
क्र. सं.	:	क्रम संख्या

प्राक्कथन

बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार 'नागार्जुन' की लेखनी कविता के अलावा गद्य की लगभग सभी विधाओं पर समान रूप से चली है। प्रेमचन्द की परम्परा को नये आयाम देकर आगे बढ़ाने वाले नागार्जुन स्वतंत्र भारत के सर्वाधिक उल्लेखनीय उपन्यासकार हैं। ये मूलतः हिन्दी साहित्य की प्रगतिशील धारा के रचनाकार हैं। मार्क्सवाद में पूर्ण आस्था रखने के कारण समाज में हो रहे वर्ग-संघर्ष को अच्छी तरह जानते-पहचानते हैं। उनकी सहानुभूति श्रमजीवी किसान-मजदूर वर्ग के साथ है। उन्होंने अपने समाज में निरंतर गिरते हुए मानव-मूल्यों को और शोषण की चक्की में पिसते किसान-मजदूरों को देखा है। वे इन सर्वहारा वर्ग को इस कदर सचेत एवं सबल बना देना चाहते हैं कि फिर उन्हें कोई अपनी स्वार्थ-सिद्धि का साधन न बना सके। इनके औपन्यासिक चरित्र निरन्तर अदम्य उत्साह, साहस के साथ संघर्ष करते हैं। और यही उनके उपन्यासों एवं औपन्यासिक चरित्रों का वैशिष्ट्य है।

साहित्यिक स्तर पर नागार्जुन प्रगतिशील आन्दोलन के एक निश्चित विचारधारा से जुड़े लोगों के बीच प्रमुख रूप से अधिक सक्रिय रहे हैं। मार्क्सवादी सिद्धांतों में इनकी दृढ़ आस्था है। मार्क्सवाद के अनुसार विचारधारा का वर्गीय आधार होता है और प्रत्येक लेखक और कथाकार अपने सृजनात्मक कार्यों में जाने-अनजाने में किसी एक सामाजिक वर्ग के ही हितों की रक्षा की अभिव्यक्ति करता है, क्योंकि प्रत्येक वर्ग वास्तविकता को अपने वर्ग दृष्टिकोण से देखता है। नागार्जुन ने निम्न तथा मध्यवर्ग की जनता को केवल सामाजिक और आर्थिक संघर्षों में घुटते हुए ही नहीं देखा है, वरन उन संघर्षों को स्वयं झेला भी है। इसलिए वे समाज के सभी शोषित-पीड़ित, गरीब किसान-मजदूर आदि सर्वहारा वर्ग के साथ पूरी सहानुभूति रखते हैं। अपने वर्गीय चरित्रों को वे इतना सबल बनाना चाहते हैं कि वे अपनी समस्या का समाधान खुद कर सकें और अपने ऊपर होनेवाले अत्याचार को मिटाकर अपनी प्राप्तव्य को पा सकें।

नागार्जुन के उपन्यासों के अध्ययनोपरांत उनके पुरूष और नारी पात्रों ने अपनी जीवंतता एवं प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझने की दुर्धर्ष क्षमता के कारण मुझे काफी आकर्षित किया है। विशेषकर उनके ग्रामीण पात्र। वे अपने हक को प्राप्त करने के लिए अदम्य साहस के साथ शोषक वर्ग से संघर्ष करते दिखाई पड़ते हैं। मेरे मन में बिजली की भाँति उनकी वर्ग-चेतना कौंध गई। मुझे एम. फिल. के लघु शोध प्रबंध हेतु एक शोध विषय अनायास ही मिल गया। और मैंने एम. फिल. शोध प्रबंध हेतु **'नागार्जुन के उपन्यासों में वर्ग-चेतना'** नामक एक शीर्षक का चुनाव किया। निर्देशक डॉ॰ दिनेश कुमार वर्मा जी से इस विषय चुनाव में काफी सहायता मिली। हालांकि नागार्जुन के उपन्यासों पर अनेक महत्वपूर्ण स्तरीय कार्य सम्पन्न हुए हैं, जिनमें 'नागार्जुन की सामाजिक चेतना' (प्रो॰ प्रणय), 'नागार्जुन का कथा साहित्य' (तेज सिंह), 'हिंदी के आंचलिक

उपन्यास' (डॉ॰ रामदरश मिश्र), 'उपन्यासकार नागार्जुन' (बाबूराम गुप्त), 'नागार्जुन का उपन्यास: समसामयिक संदर्भ' (डॉ॰ सुरेन्द्र कुमार यादव), 'नागार्जुन: रचना प्रसंग और दृष्टि' (सं. राम निहाल गुंजन), 'नागार्जुन का गद्य साहित्य' (डॉ॰ आशुतोष राय), 'आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास' (डॉ॰ नगीना जैन) आदि महत्वपूर्ण हैं। लेकिन वर्ग-चेतना की दृष्टि से यह एक नवीन और मौलिक कार्य होगा, ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है। इसमें निम्न और मध्यवर्ग में उत्पन्न चेतना को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध पाँच अध्यायों में विभक्त है, जिनका सांकेतिक विवरण निम्नलिखित है-

प्रथम अध्याय **'वर्ग का स्वरूप एवं वर्ग चेतना'** के अंतर्गत वर्ग की अवधारणा तथा परिभाषा प्रस्तुत की गई है। भारत में वर्गीय समाज की ऐतिहासिक विकास को दिखाते हुए युगीन राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों में मध्यवर्ग के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है तथा इन परिस्थितियों में वर्ग-चेतना का सूत्रपात कैसे हुआ, उस पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही स्वातंत्र्योत्तरकालीन हिन्दी के वर्ग-सचेतन उपन्यासों का उल्लेख करते हुए उनमें नागार्जुन का स्थान निर्धारित किया गया है।

द्वितीय अध्याय **'नागार्जुन के उपन्यासों में वर्ग-चेतना का क्रमिक विकास'** के अंतर्गत संक्षेप में नागार्जुन का व्यक्तित्व एवं कृतित्व प्रस्तुत किया गया है। नागार्जुन के उपन्यासों की पृष्ठभूमि के अंतर्गत राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों में वर्ग-चेतना को चित्रित किया गया है। नागार्जुन के उपन्यासों में अंधविश्वास, कुसंस्कार, कुरीतियों का घोर विरोध किया गया है। यह उनके उपन्यासों का सबल पक्ष है, जो इस अध्याय के अंतर्गत विवेचित है। साथ ही उनके औपन्यासिक पात्रों को युग-चेतना के संवाहक के रूप में चित्रित किया गया है।

तृतीय अध्याय **'नागार्जुन के उपन्यासों में नारी : समाज-सचेतनता की सबल अभिव्यक्ति'** नारी से संबंधित है। क्योंकि नागार्जुन के उपन्यासों में नारी अधिक सचेत दिखाई पड़ती है। वे अपने अधिकार को प्राप्त करने के लिए अधिक सक्रिय हैं। वह पुरूषों के हाथों की कठपुतली मात्र बनकर रहना नहीं चाहती। इस अध्याय में नारी व्यक्तित्व के विभिन्न पक्ष को उभारा गया है। नागार्जुन के उपन्यासों में नारी माता, पत्नी, प्रेमिका, भाभी, भगिनी, पुत्री इत्यादि विभिन्न रूपों में चित्रित हुई हैं। उनके इन्हीं स्वरूपों को यहाँ उजागर किया गया है। कुछ नारी रूढ़िवादी विचारधारा वाली हैं तो कुछ आधुनिक प्रवृत्तियों वाली। कुछ ऐसी भी नारियाँ हैं जिनमें परम्परागत एवं आधुनिक प्रवृत्तियों का अद्‌भुत समन्वय देखने को मिलता है। नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित नारी अपने ऊपर होनेवाले अन्याय और अत्याचार के विरूद्ध विद्रोही तेवर अख्तियार करती हुई नजर आती हैं। उनके इस विद्रोही तेवर को उजागर करते हुए, नागार्जुन के नारी विषयक विचारों की भी समीक्षा इस अध्याय के अंतर्गत की गई है।

चतुर्थ अध्याय **'नागार्जुन के उपन्यास : उपन्यास-कला के संदर्भ में'** के अंतर्गत नागार्जुन के उपन्यासों की समीक्षा उपन्यास-कला की दृष्टि से की गई है। साथ ही नागार्जुन का शिल्पगत वैशिष्ट्य, उपन्यासों की भाषा-शैली, प्रासंगिकता एवं उपलब्धियों का आकलन किया गया है।

पंचम अध्याय **'उपसंहार'** के अंतर्गत उपरोक्त अध्यायों में उल्लिखित विषय-वस्तुओं की समीक्षा की गई है।

अपने उपरोक्त विचारों एवं एतद्संबंधी अभीप्साओं को लघु शोध-प्रबंध के रूप में साकार करने में जिन स्नेही जनों का सहयोग मुझे प्राप्त हुआ है, उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ।

मैं दरङ महाविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष, डॉ॰ कृष्णकांत झा एवं नेपाली विभागाध्यक्ष, श्री खेमानन्द शर्मा के प्रति आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होंने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से समय समय पर अपना अमूल्य सलाह एवं परामर्श मुझे दिया है। दरङ महाविद्यालय एवं जिला ग्रंथालय, तेजपुर (असम) के पुस्तकालयाध्यक्षों के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने मुझे आवश्यकतानुसार संदर्भ-ग्रन्थों को उपलब्ध कराया। उनके सहयोग के बिना इस कार्य को पूर्णता तक पहुँचाना संभव नहीं था।

अब तक मैंने जो कुछ भी प्राप्त किया है और जहाँ तक भी पहुँच पाया हूँ, वह पिताश्री राम सागर भगत एवं माताश्री शारदा देवी के पूर्ण आशीष एवं धर्मपत्नी श्रीमती मंजु देवी की प्रेरणा का ही प्रतिफल है। मैं इनका आजन्म चिरऋणी रहूँगा।

मैं मदुरै कामराज विश्वविद्यालय, मदुरै के प्रति भी आभार प्रकट करना चाहूँगा, जिसने दूरत्व शिक्षा कार्यक्रम के अंतर्गत हिन्दी में एम. फिल. पाठ्यक्रम को सम्मिलित कर हमें अध्ययन का एक अवसर प्रदान किया।

शोध प्रबंध के टंकक श्री प्रकाश भट्टराई के प्रति मैं आभार प्रकट करना चाहूँगा, जिन्होंने बड़ी लगन और मेहनत से इस शोध-प्रबंध को टंकित कर एक आकार प्रदान किया। इनके सहयोग के बिना सीमित समय में यह सब कुछ असंभव था।

प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध डॉ॰ दिनेश कुमार वर्मा (हिन्दी विभागाध्यक्ष, रंगापारा महाविद्यालय) के कुशल निर्देशन में सम्पन्न हुआ। उनका ज्येष्ठ भातृवत् स्नेह एवं ममत्वपूर्ण व्यवहार मेरा सम्बल रहा है। इस शोध-प्रबंध का प्रणयन डॉ॰ वर्मा एवं उनकी धर्मपत्नी डॉ॰ मिलि भट्टाचार्य (विभागाध्यक्ष, बंगला विभाग, रंगापारा महाविद्यालय) के प्रोत्साहन, आशीर्वाद एवं वात्सल्य-अनुग्रह का प्रतिफल है। मैं पूर्णतः उनके प्रति श्रद्धावनत् हूँ।

उदय भान भगत

(उदय भान भगत)

विषय-सूची

पृ. सं.

प्राक्कथन I - III

प्रथम अध्याय : वर्ग का स्वरूप एवं वर्ग-चेतना 1 - 18

1.1. - वर्ग की अवधारणा एवं परिभाषा

1.2. - भारत में वर्गीय समाज का ऐतिहासिक विकास

1.3. - युगीन परिस्थिति और मध्यवर्ग : वर्ग-चेतना का सूत्रपात

1.4. - हिन्दी के वर्ग-सचेतन उपन्यास और उनमें नागार्जुन का स्थान

द्वितीय अध्याय : नागार्जुन के उपन्यासों में वर्ग-चेतना का क्रमिक विकास 19 - 40

2.1. - नागार्जुन : व्यक्तित्व और कृतित्व

2.2. - नागार्जुन के उपन्यास : पृष्ठभूमि

2.2.1. - राजनैतिक परिस्थितियाँ एवं वर्ग-चेतना

2.2.2. - सामाजिक परिस्थितियाँ एवं वर्ग-चेतना

2.2.3. - आर्थिक परिस्थितियाँ एवं वर्ग-चेतना

2.3. - अंधविश्वास, कुसंस्कार और कुरीतियों का विरोध : नागार्जुन के उपन्यासों का सबल पक्ष

2.4. - नागार्जुन के औपन्यासिक पात्र : युग-चेतना के संवाहक

तृतीय अध्याय : नागार्जुन के उपन्यासों में नारी : समाज सचेतनता की सबल अभिव्यक्ति 41 - 56

3.1. - नागार्जुन के नारी विषयक विचार : समीक्षा एवं मूल्यांकन

3.2. - नारी : व्यक्तित्व के विभिन्न पक्ष और नागार्जुन के उपन्यास

3.2.1. - नारी : माता, पत्नी, प्रेमिका, भाभी, भगिनी, पुत्री के रूप में

3.2.2. - नारी : परम्परागत एवं आधुनिक प्रवृत्तियों का अद्‌भुत समन्वय

3.2.3. - नारी : अन्याय-शोषण के प्रति विद्रोही तेवर

चतुर्थ अध्याय : नागार्जुन के उपन्यास : उपन्यास-कला के संदर्भ में 57 - 74

4.1. - नागार्जुन का शिल्पगत वैशिष्ट्य

4.2. - नागार्जुन के उपन्यास : भाषा और शैली

4.3. - नागार्जुन के उपन्यास : प्रासंगिकता की दृष्टि से

4.4. - नागार्जुन के उपन्यास : उपलब्धियाँ

पंचम अध्याय : उपसंहार 75 - 77

आधार ग्रन्थ एवं सहायक-संदर्भ ग्रंथों की सूची 78 - 81

प्रथम अध्याय

वर्ग का स्वरूप एवं वर्ग-चेतना

मानव समाज में वर्ग की अवधारणा पाश्चात्य चिन्तन की देन है। 19 वीं सदी के भारतीय नव-जागरणकाल में छापेखाने के विकास सहित अन्य विकासोन्मुख गतिविधियों के फलस्वरूप पश्चिम के देशों के साथ विचार और दर्शन के आदान-प्रदान का सूत्रपात हुआ- जिसका दूरगामी प्रभाव भारतीय समाज-व्यवस्था और साहित्य पर पड़ा। बीसवीं सदी के भारतीय साहित्य का अधिकांश इस अवधारणा विशेष को आयत कर गतिशील हुआ है। वर्ग को केन्द्र में रखकर समूची समाज-संरचना का गूढ़ विश्लेषण करने तथा सामाजिक समस्याओं का समाधान वर्ग-संघर्ष में ढूँढ़ने के प्रति समाजशास्त्रियों एवं बाद में चलकर सामान्य जन में आग्रह बढ़ा। यही कारण है कि आज मानव समाज की कल्पना के साथ ही वर्गों का स्वरूप हमारे मन में अपने-आप जागृत हो जाता है। इन वर्गों को सामाजिक वर्गीकरण का दूसरा रूप कहा जा सकता है। समाजशास्त्रियों की दृष्टि में वर्गीकरण की प्रक्रिया द्वारा समाज अपने सदस्यों के स्थान का निर्धारण करता है।

आधुनिक युग में वर्ग की भावना को एक विशिष्ट सामाजिक प्रक्रिया का रूप देने का श्रेय महान चिन्तक एवं विचारक कार्ल मार्क्स को है। मार्क्स के अनुसार आदिम समाज में वर्ग-भावना या श्रेणी-भेद नहीं था, क्योंकि उत्पादन इतना कम होता था कि लोग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति ही कर सकते थे; बचाना उनके लिए असंभव बात थी। धीरे-धीरे उत्पादन की बृद्धि के साथ लोगों ने सम्पत्ति बनाना प्रारम्भ किया और इस प्रकार वैयक्तिक सम्पत्ति की भावना को समाज में बढ़ावा मिला। व्यक्तिगत सम्पत्ति की भावना, जैसे-जैसे बढ़ती गई वैसे ही वर्गों की भावना भी आकार लेने लगी। व्यक्तिगत सम्पत्ति की रक्षा में व्यक्तिगत संघर्ष हुए और इसप्रकार से समूहगत हितों की रक्षा के लिए वर्ग-संघर्ष प्रारंभ हुआ। इसी वर्ग-संघर्ष में वर्ग-चेतना दिखाई पड़ती है।

1.1. वर्ग की अवधारणा एवं परिभाषा :

सामाजिक वर्ग विभाजन की अवधारणा आधुनिक काल की एक प्रधान वैचारिक अवधारणा है। इस अवधारणा के जन्मदाताओं में स्पेंसर, बेवलन, हेगेल एवं कार्ल मार्क्स प्रधान हैं।

कार्ल मार्क्स का जीवनादर्श श्रमिक-कृषक वर्ग के मुक्ति की बुनियाद गठन में एक प्रमुख अस्त्र के रूप में स्थिर है। कार्ल मार्क्स दरिद्र जनसाधारण की समस्याओं के समाधान एवं उन्हें सामाजिक न्याय दिलाने के लिए आजीवन प्रयासरत थे। "The life of Marx was a life of poverty and overstrain. He had to flee from one country to another due to his conspiratorial activities."[१] कार्ल मार्क्स की स्पष्ट मान्यता थी कि अर्थ ही वर्ग-विभाजन का सर्वोपरि मानदण्ड होना चाहिए। वर्ग-व्यवस्था के सिद्धांत के प्रतिपादकों के मतानुसार, प्रत्येक समाज के मानव-समूह को उनके मौलिक लक्ष्य और आदर्श की भित्ति पर एक दूसरे से पृथक किया जा सकता है, जैसे- क्रीत दास एवं स्वामी, जमींदार एवं कृषक, पूँजीपति एवं श्रमिक, धनी एवं गरीब इत्यादि।

वर्ग व्यवस्था मुक्त स्तरीकरण का प्रतिनिधित्व करता है। वर्ग-व्यवस्था में सामाजिक गतिशीलता की सुविधा है। वर्ग में किसी प्रकार का बाधा-निषेध नहीं है। इस व्यवस्था में जन्म का कोई बंधन नहीं है। एक दरिद्र व्यक्ति भी अपनी बुद्धि-बल से शक्ति और सामर्थ्य अर्जन कर उच्चवर्ग का हो सकता है। वर्ग की कोई निर्धारित वृत्ति नहीं है। वे अपनी रूचि-अभिरूचि के अनुसार कोई भी वृत्ति अपना सकते हैं। वर्ग-व्यवस्था में एक व्यक्ति का स्तर उसकी अपनी भूमिका पर निर्भर करता है। इसके अलावा वर्ग-व्यवस्था के साथ धर्म का कोई सम्बन्ध नहीं है। इसलिए वर्ग-व्यवस्था को धर्म नियंत्रित नहीं करता है। वर्ग-व्यवस्था निरन्तर परिवर्तनशील होता है।

कार्ल मार्क्स के अनुसार समाज में साधारणत: तीन वर्ग का साक्षात्कार होता है- जमींदार, पूँजीपति एवं साधारण श्रमिक या सर्वहारा वर्ग। प्रथम वर्ग के आय का मूल स्रोत है खजाना, द्वितीय वर्ग का सूद एवं लाभांश एवं तृतीय वर्ग के लोगों के लिए शारीरिक परिश्रम ही एकमात्र मूलधन स्वरूप है। अर्थात् शारीरिक परिश्रम पर ही तृतीय श्रेणी का जीवन निर्भरशील है।

मार्क्स के अनुसार अर्थ ही वर्ग-विभाजन का मूल आधार है। उत्पादन की भिन्नता आर्थिक अवस्था की भिन्नता को जन्म देता है। मनुष्य अपनी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उपार्जनमुखी कामों में अपने आपको लगाता है। अत: भिन्न-भिन्न मानसिकता के संस्पर्श में वह आता है। फलस्वरूप भिन्न स्तर के मनुष्यों के जीवन-यापन में कुछ अंतर दिखाई पड़ता है। उदाहरणस्वरूप हम धनी और गरीब के जीवन-यापन में दिखाई पड़ने वाले असामंजस्य को देख सकते हैं। दैनिक कार्यकलाप, दृष्टिकोण, आदर्श, मूल्यबोध, आचरण इत्यादि विभिन्न क्षेत्रों में दो वर्गों के बीच काफी अंतर परिलक्षित होता है। इस अंतर का मूल कारण ढूँढ़ने पर पता चलता है धनी एवं गरीब इन दो श्रेणियों के बीच उत्पादनमुखी कार्य एवं आय के स्रोत की विभिन्नता ही उनके बीच नियत अंतर की सृष्टि करता है। कार्ल मार्क्स ने स्पष्टत: उल्लेख किया है कि वर्ग

---

१. A Simple Study of Political Thought - Sachdeva and Gupta - Page- 109

शाश्वत नहीं है। प्राचीन समाज में जहाँ व्यक्तिगत मालिकाना नहीं था, तब वहाँ वर्ग-व्यवस्था का भी प्राधान्य नहीं था। लेकिन व्यक्तिगत मालिकाना के उभरने के साथ ही वर्ग-व्यवस्था का प्राधान्य दृष्टिगोचर होने लगा।

वर्ग-विभेद ही स्तर की भिन्नता का सूचक है। स्तर की इस विभिन्नता को समाज के प्रत्येक वर्ग ने अत्यंत सचेत रूप से परखा है। मजदूरी ही जहाँ पर प्राधान्य है, वहाँ संघर्ष का बीज अंकुरित होना स्वाभाविक है। अत: कहा जा सकता है कि- "Each class stands in a definite relation to other so far as the process of production in concerned, the sum total of which forms the economics infrastructure."[१]

सामाजिक श्रेणीकरण का विशिष्ट रूप ही वर्ग कहलाता है। मैकाइवर और पेज जैसे समाज शास्त्रियों ने 'वर्ग' की परिभाषा देते हुए लिखा है- "किसी वर्ग का अर्थ ऐसे श्रेणी अथवा प्रकार से है जिसके अंतर्गत व्यक्ति अथवा व्यक्तिसमूह आते हों।"[२] रूसी राज्य क्रांति के प्रणेता एवं महान विचारक लेनिन के अनुसार-"वर्ग व्यक्तियों के बड़े-बड़े दल होते हैं। ये दल एक-दूसरे से भिन्न होते हैं जिनकी भिन्नता का आधार व्यक्ति की सामाजिक उत्पादन-पद्धति के अनुसार निर्धारित किया जाता है। इस अन्तर को उत्पादन के साधनों (जिन्हें अधिकांश वर्गों में कानून द्वारा निर्मित किया जाता है) से ज्ञात कर सकते हैं। यह अंतर कुछ तो श्रमजीवियों के संगठन के कार्यों पर आधारित होता है और कुछ सामाजिक धन से अर्जित करने के उपायों से भी ज्ञात किया जा सकता है।"[३] समाजशास्त्रियों की दृष्टि में वर्ग का निर्णय व्यक्ति या समूह के आर्थिक एवं सामाजिक स्तरों की भिन्नता पर आधारित होता है। इसीलिए एक विशिष्ट प्रकार के आर्थिक और सामाजिक स्तर वाले व्यक्ति एक समूह के अंतर्गत आबद्ध होकर एक विशिष्ट वर्ग का निर्माण करते हैं।

समाज में मुख्यत: तीन वर्ग की चर्चा की गई है- उच्चवर्ग, मध्यवर्ग और निम्नवर्ग। वित्त, सम्पत्ति, आय एवं पद मर्यादा इत्यादि के आधार पर उच्च-उच्चवर्ग, मध्य-उच्चवर्ग, निम्न-उच्चवर्ग, उच्च-मध्यवर्ग, मध्य-मध्यवर्ग एवं निम्न मध्यवर्ग तथा उच्च-निम्नवर्ग, मध्य-निम्नवर्ग एवं निम्न-निम्नवर्ग आदि वर्ग विभाजन किया गया है, लेकिन ये सभी उपरोक्त तीन मूल वर्गों में ही समाहित हैं। अतएव यहाँ मूल रूप से तीन वर्ग पर ही विचार करना उचित होगा।

उच्चवर्ग

मार्क्सवादी सिद्धांत का उच्चवर्ग की परिभाषा के विषय में कहना है कि सामन्ती सभ्यता में उच्चवर्ग शासक वर्ग का समगोत्रीय है। विशेषत: भारत में उच्चवर्ग द्वारा जमींदारों का बोध होता है। डॉ॰ इन्द्रनाथ मदान का कहना है- "सामन्तशाही का संबंध उस समाज या समाज की उस शासक संस्कृति या वर्ग से है जो प्रमुख रूप से कृषि संबंधित रही है और जिसमें सम्पत्ति का प्रधान रूप लगान रहा है।"[४] उल्लेखनीय है कि यह वर्ग स्वंय श्रम नहीं करता, दूसरों की परिश्रम पर अपनी अर्थ वृद्धि करता है। सामन्तशाही सभ्यता ही विकसित होकर अभिजात्य वर्ग में प्रतिफलित होता है।

---

१. Social Change : Themes and Perspective - D. N. Jena and M. K. Mahapatra, Page- 82
२. सोसाइटी : आर. एम. मैकाइवर तथा सी. एच. पेज, पृ॰ - 348
३. फ़ंडामेंटल्स ऑफ़ मर्क्सिज्म - लेनिनिज्म - मैनुअल, पृ॰ - 150
४. प्रेमचन्द : एक विवेचन - डॉ॰ इन्द्रनाथ मदान, पृ॰ - 151

अभिजात्य वर्ग का संबंध- ''समाज के उस शासक संस्कृति या वर्ग से है जो प्रमुख रूप में पूँजीवादी होता है, जिसमें सम्पत्ति का प्रधान रूप व्यापार या उद्योग-धंधों से प्राप्त होता है और सत्ता विशेषकर उस वर्ग के हाथ में रहती है जो व्यापार या उद्योग-धंधों को स्वयं नहीं करता, वरन् दूसरों के श्रम पर लाभ कमाता है।''[१]

उच्चवर्ग का मूल स्वरूप उत्पीड़न का है। इससे वे कभी विरत नहीं होते। ये समाज के एक ऐसे प्रभुत्वशाली वर्ग है जिनके प्रभुत्व की बुनियाद मात्र बलप्रयोग या जोर-जबरदस्ती पर टीकी नहीं होती, बल्कि इससे अधिक उनकी संस्थाओं और वैचारिक तंत्र की शक्ति पर रखी होती है जो पूरे समाज पर वर्चस्ववादी विचारधारा को लागू करते हैं। अपने प्रभुत्व को बचाए रखने की मानसिकता उनके आचरण में सदैव प्रकाशित होता रहता है। यह वर्ग सदैव असंतुष्ट होकर प्रतिरोध और दमन में लिप्त रहता है।

पूँजीवाद के उदय के साथ ही भारत में उच्चवर्ग का जन्म हुआ। इस वर्ग में एक तरफ सामंत, जमींदार, भूपति हैं तो दूसरी तरफ व्यापारी, राजनेता, अधिक आय सम्पन्न पदाधिकारी, प्रसिद्ध डाक्टर, वकील एवं महाजन इस वर्ग में आने के अधिकारी हैं। डॉ. रामविलास शर्मा का कहना है- 'देशी पूँजीपतियों में केवल उद्योगपति ही नहीं हैं, जमींदार और सामंत ही नहीं हैं, शहरों और ग्रामों में फैले हुए सूदखोर महाजन भी हैं।' दूसरों के परिश्रम अथवा पूर्वपुरूषों द्वारा संग्रहित धन पर मौज करनेवाले ये धनी उच्चवर्ग जनसाधारण को अपने महत्वाकांक्षा की तृप्ति का साधन बनाते हैं। यह वर्ग बिना परिश्रम किए सरकारी उच्च पद पर आसीन होकर गगनचुंबी महलों में विलासी जीवन व्यतीत करने का इच्छुक होता है। यह वर्ग अपने अहंकार में मस्त होने के बावजूद अपने चेहरे पर भद्रता एवं उदारता का मुखौटा पहने रहता है।

मध्यवर्ग

मार्क्स ने समाज के विभिन्न वर्गों का नामाकरण करते हुए प्रमुख रूप से तीन वर्गों की कल्पना की है। पहले वर्ग को उसने 'बोर्जुआ' या शोषक वर्ग कहा है और दूसरे को 'प्रोलेटेरिएट' या शोषित वर्ग की संज्ञा दी। शोषक और शोषित वर्ग के संघर्ष से ही कालान्तर में एक तीसरे वर्ग का जन्म हुआ जिसे मार्क्स ने 'मध्यवर्ग' कहा। यशपाल के अनुसार - ''विकसित पूँजीवाद के युग में मध्यम श्रेणी की स्थिति को समझने के लिए यह याद रखना आवश्यक है कि श्रेणियों का विभाजन और संगठन उनकी आर्थिक स्थिति से होता है।''[२] मध्यवर्ग के अंतर्गत प्रोलेटेरिएट, छोटे व्यवसायों के स्वामी, पेशेवर लोग, बाबू वर्ग और सम्पन्न किसान सम्मिलित होते हैं।

१. प्रेमचन्द : एक विवेचन - डॉ॰ इन्द्रनाथ मदान, पृ॰ - 151

२. मार्क्सवाद - यशपाल, पृ॰ 173

हिन्दी साहित्य कोश में मध्यवर्ग की विशेषताओं और उसके व्यक्तियों के स्वरूप की चर्चा करते हुए कहा गया है- ''मध्यवर्ग सामन्तवादी व्यवस्था में नहीं पाया जाता, क्योंकि उस समय जमींदार तथा किसान का सीधा सम्बन्ध था। पूँजीवादी व्यवस्था ने समाज को इतना जटिल बना दिया है कि एक मध्यवर्ग की भी आवश्यकता हुई जो इस जटिल व्यवस्था के संघटन-सूत्र को संभाल सके। इस वर्ग में नौकरी पेशा, शिक्षक, क्लर्क और अन्य साधारण लोग आते हैं। मध्यवर्ग विशेषत: बुद्धिप्रधान वर्ग माना गया है और सामाजिक क्रांति के प्राय समस्त विचारों का सर्जन मध्यवर्ग में होता है।''[१]

मध्यवर्ग अपने सामान्य विशेषताओं के कारण अन्य वर्गों से अलग हो जाता है। इसमें आत्मनिर्भरता होती है। जीवन और परिस्थितियों के साथ संघर्ष करने की अद्‌भुत क्षमता भी मध्यवर्ग में होती है। इसमें नेतृत्व की पर्याप्त क्षमता भी होती है। मध्यवर्ग समाज अभिजात्य वर्ग और निर्धन वर्ग के बीच में आता है। यह वर्ग इतना बृहत् है कि कहीं यह उच्चवर्ग के निकट दिखाई देता है और कहीं निम्नवर्ग के साथ। वंश, आय, जीविका, शिक्षा, रहन-सहन, अभिरूचि, कौटुम्बिक तथा सामाजिक मर्यादा के अनुसार यह वर्ग समाज के अन्य दोनों ही वर्गों से पृथक दिखाई देता है। डॉ बलजीत सिंह ने मध्यवर्ग के लोगों की परिभाषा, स्थिति तथा उनके विभिन्न स्तरों की चर्चा करते हुए लिखा है- ''मध्यवर्ग में केवल नियोजक ही नहीं अपितु कई कार्यकर्ता होते हैं, जिनमें कुछ स्वतंत्र अथवा आत्मनिर्भर काम करने वाले, कुछ व्यापारी और ग्राहक, कुछ सम्पत्तिशाली और कुछ निर्धन होते हैं। इस वर्ग के लोगों की आय औसत दर्जे की होती है तथा कुछ लोग ऐसी भी होते हैं जिनकी कोई आय ही नहीं होती।''[२]

निम्नवर्ग

ब्रिटिश साम्राज्य व्यवस्था ने भारतीय समाज को जड़ से हिला दिया था। इस समय नूतन औद्योगिक विकास, संचार-व्यवस्था एवं परिवहन-व्यवस्था की उन्नति के लिए श्रम पर निर्भरशील एक नूतन श्रेणी का उदय हुआ। यही वर्ग निम्नवर्ग के नाम से जाना गया। आर्थिक दृष्टि से यह वर्ग एकदम दयनीय हो गया। इस वर्ग के लोगों के जीवन-यापन का एकमात्र आधार श्रम ही रह गया। इस वर्ग के वृहत् संरक्षक लोग अत्यंत ही दु:ख एवं कष्ट का जीवन व्यतीत करने को मजबूर हो गए। आर्थिक रूप से सबसे पिछड़ी यह वर्ग राजनैतिक दृष्टि से भी वंचित रहा, क्योंकि यहाँ पर उच्चवर्ग पहले से ही समस्त सुविधाओं को आत्मसात कर बैठा हुआ है। गणतांत्रिक देशों में श्रमजीवी लोग ही अपने कायिक परिश्रम से देश की सभ्यता को समुन्नत करके रखते हैं। उनके

१. हिन्दी साहित्य कोश - डॉ॰ धीरेन्द्र वर्मा (सं)

२. अरबन मिडिल क्लास-'क्लाइम्बर्स'- डॉ॰ बलजीत सिंह, पृ॰ 3

परिश्रम से ही देश की पूँजी मजबूत होती है। लेकिन उन्हें कभी सुख नसीब नहीं होता। स्वास्थ्य, शिक्षा, सम्पत्ति एवं समस्त सुख सुविधाओं से उन्हें वंचित होना पड़ता है।

भारत में कृषकों को सबसे दरिद्र माना जाता है। लेकिन निम्नवर्ग उनसे भी अधिक गरीब एवं विपन्न होता है। वास्तव में उन्हें मनुष्य के रूप में परिगणित नहीं किया जाता। इन्द्रनाथ मदान के अनुसार इन्हें किसी भी वर्ग में शामिल नहीं किया जाता, क्योंकि वर्ग का अर्थ ही है संगठन और निम्नवर्ग सबसे अधिक विश्रृंखलित है। समाज में सर्वाधिक उपेक्षित यह वर्ग सबसे अधिक असंगठित है। यह वर्ग अपने अधिकार के लिए कभी आवाज नहीं उठाता, क्योंकि इन्हें अपनी स्थिति का ज्ञान नहीं होता। मार्क्स के शब्दों में कहा जा सकता है कि इस वर्ग के लोग अपना प्रतिनिधित्व नहीं कर सकते, दूसरों को इनका प्रतिनिधित्व करना पड़ता है। वंश की तथाकथित मध्यवर्गीय मर्यादा इस निम्नवर्ग के लोगों में नहीं रहता। इनकी एक प्रधान विशेषता है कि परिवार के प्राय: सभी सदस्य काम करके जीविका निर्वाह करते हैं। इनकी आवश्यकता अत्यन्त सीमित होती है। अपनी स्थिति को नियति निर्धारित मानकर यह वर्ग थोड़े में ही संतुष्ट रहता है।

हमारे समाज में यह प्रचलित है कि अनुन्नत श्रेणी ही निम्न वर्ग है। मार्क्स के अनुसार आधुनिक औद्योगिक विकास वंशानुगत श्रम विभाजन को खत्म कर देगा, जिसपर भारत की जाति-पाँति की व्यवस्था खड़ी है। और अंत में जाति ही वर्ग में परिवर्तित हो जाएगा। डॉ राममनोहर लोहिया के समाज दर्शन के अनुसार कहा जा सकता है कि-''वर्ण या वर्ग एक ही सिक्के के दो पहलू हैं''[१] भीमराव अम्बेडकर के अनुसार ''आधुनिक हिंदू समाज में निम्नवर्ग के तीन प्र-वर्ग हैं- पहला वर्ग उन जरायम पेशा लोगों का है जो चोरी-चकारी करके जीविकोपार्जन करता है। दूसरा आदिवासियों का वर्ग है जो अपनी आरंभिक बर्बर अवस्था में जीता है और तीसरी बड़ी संख्या उस वर्ग की है, जिसे सामाजिक व्यवहार से परे की चीज समझा गया है, जिसके स्पर्श मात्र से आदमी अपवित्र होता है।''[२]

1.2 भारत में वर्गीय समाज का ऐतिहासिक विकास

वर्तमान वैज्ञानिक प्रगति ने सभी देशों को एक-दूसरे के निकट ला दिया है। वे एक दूसरे से काफी प्रभावित भी हुए हैं। भारत में वर्गीय समाज के विकास में अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियों की मुख्य भूमिका रही है। प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् भारत में मध्यवर्ग का प्रसार तो हुआ ही, साथ ही उसकी अपनी स्पष्ट इकाई भी बन गई। इसके व्यापक प्रभाव को भारतीय समाज के प्रत्येक अंग

---

१. समकालीन सृजन (पत्रिका) के लेख - 'जातिप्रथा नाश : क्यों और कैसे' - राम मनोहर लोहिया, पृ॰ 34 से उद्धृत संयुक्तांक जुलाई-दिसम्बर, 1989।

२. समकालीन सृजन (पत्रिका) के लेख - 'अछूत क्यों और कैसे' - भीमराव अम्बेडकर, पृ॰ 24 से उद्धृत संयुक्तांक जुलाई-दिसम्बर, 1989।

पर देखा जा सकता है। आज भारतीय जीवन के प्रत्येक पक्ष को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मध्यवर्ग ने प्रभावित किया है। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि सारे आन्दोलन का अधिकांश नेतृत्व इसी वर्ग ने किया है।

भारत में आधुनिक मध्यवर्ग का उद्‌भव और विकास अंग्रेजी साम्राज्य के कारण हुआ। अंग्रेजों के आगमन के पूर्व भारतीय गाँव आर्थिक दृष्टि से इकाई होते थे। अंग्रेजी शासन के कारण उस आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन हुआ। अंग्रेजो के आगमन से पूर्व के भारतीय मध्यवर्ग के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए डॉ॰ नासिर अहमद खाँ ने लिखा है- ''समाज के उच्चस्तर के व्यक्तियों में राजगुरू, क्षत्रिय राजा और उनके अभिकर्ता सम्मिलित थे। इन व्यक्तियों में ब्राह्मण, अध्यापक, उपदेशक, क्षत्रीय शूरवीर और राजनीतिक नेता भी थे। कुछ ऐसे भी व्यक्ति थे जो शासन व्यवस्था में सहायता करते थे। ये सभी व्यक्ति मध्यवर्ग के ही थे। इन व्यक्तियों में वैश्य जाति के लोग भी शामिल थे, जो विशेषकर सौदागर, पूँजीपोषक और औद्योगिक थे। सामन्त युग में उच्च और मध्यवर्ग के व्यक्ति बढ़ते गए।''[१] अंग्रेजों ने भारत में आकर भारत की आर्थिक अवस्था के साथ-साथ राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन को भी काफी प्रभावित किया।

मध्यवर्ग के विकास में अंग्रेजी शिक्षा को उत्तरदायी मानते हुए ए. आर. देसाई लिखते हैं- ''अंग्रेजों ने भारत में नवीन शिक्षा पद्धति का सूत्रपात किया, जिसके फलस्वरूप शिक्षित मध्यवर्ग का निर्माण हुआ। उस वर्ग में वकील, डॉक्टर, टेक्नीशियन, प्रोफेसर, पत्रकार, राज्य कर्मचारी, क्लर्क, विद्यार्थी और अन्य व्यक्ति सम्मिलित थे।''[२] अंग्रेजी शिक्षा न केवल बुद्धिजीवियों के निर्माण में ही सहायक हुई, बल्कि मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों की संख्या में निरन्तर बृद्धि भी अंग्रेजी शिक्षा और शासन द्वारा हुई।

ब्रिटिश शासकों की शैक्षणिक नीति और मध्यवर्ग की आवश्यकता के विषय में हुमायुँ कबिर ने लिखा है- ''काफी समय तक शासन व्यावसायिक लाभ को दृष्टि में रखकर किया जाता रहा। देश के साधनों का पूर्ण रूपेण शोषण करने के हेतु ब्रिटेन को ऐसे मध्य श्रेणी के मनुष्य समुदाय की आवश्यकता थी जो उसके और भारतीय लोगों के बीच मध्यस्थ का कार्य कर सके। शासन प्रबंध की आवश्यकता के संबन्ध में भी यही समस्या थी। परिणामस्वरूप प्रबंध सम्बन्धी एक बड़े वर्ग का निर्माण हुआ, जिसने अंग्रेजों को शासन प्रबंध और व्यापार में सहायता दी।''[३] वर्तमान की अंग्रेजी शिक्षा मध्यवर्ग के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है। अंग्रेजी की मोह भारतीयों के मानस पर इस कदर जम चुकी है कि अंग्रेजों के चले जाने के बाद भी स्वतंत्र भारत में अंग्रेजी का मोह भारतीय मध्यवर्ग छोड़ नहीं पा रहा है। जिस अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से सफलता के द्वार खुले हैं, वही अंग्रेजी, शिक्षा के क्षेत्र में वर्गों का निर्माण कर वर्ग-संघर्ष को जन्म देती है।

---

१. मिडिल क्लास इन इण्डिया - डॉ॰ नासिर अहमद खाँ, पृ॰ 3
२. सोशल बेकग्राउण्ड आफ इण्डियन नेशनेलिज्म- ए. आर. देसाई, पृ॰ 182
३. इण्डियन हेरिटेज - हुमायुँ कबिर, पृ॰ 102

भारत में वर्गीय समाज के विकास में अंग्रेजी शिक्षा के साथ ही पूँजीवादी व्यवस्था का विशेष योगदान रहा है। शताब्दियों तक परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़े रहने के कारण भारत की पूँजीवादी व्यवस्था अन्य देशों की तुलना में स्वस्थ ढंग से विकसित न हो सकी। इस अर्द्ध-विकसित पूँजीवादी व्यवस्था का प्रभाव भारतीय वर्गों पर पड़ा। अत: मुख्य रूप से भारतीय मध्यवर्ग में निराशा और असंतोष की भावना अपेक्षाकृत अधिक प्रबल हुई। हुमायुँ कबिर के शब्दों में- "सभी जगह मध्यवर्ग यह अनुभव करने लगा कि उसका कोई भविष्य नहीं है। भारत में उसकी दशा और भी दयनीय है। पूँजीवाद के विकास ने अन्य देशों में सामाजिक अर्थ-व्यवस्था में उनके लिए स्थान बना दिया है, पर भारत में पूँजीवाद को अंग्रेजों ने राजनीतिक और आर्थिक दबावों के कारण बढ़ने नहीं दिया। इसपर भी समाज की अन्य श्रेणियों का झुकाव, मध्यवर्ग की अपेक्षाकृत अधिक अच्छी दशा देखकर उसकी ओर बराबर ही रहा। मध्यवर्ग इतना बढ़ा कि मौजूदा आर्थिक स्थिति उस संस्था को संभाल न सकी।"[१] अत: पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था ने भारतीय मध्यवर्ग को काफी प्रभावित किया है।

भारत में वर्गीय समाज के विकास में पाश्चात्य संस्कृति भी पर्याप्त मात्रा में सहायक रही। अंग्रेजों की भाषा, रहन-सहन, रीति-रिवाज का प्रभाव बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध की पीढ़ी पर पड़ा। लार्ड मैकाले का अंग्रेजी का उद्देश्य ही भारतीयों को तन और मन से अंग्रेज बनाने का था। मैकाले की दृष्टि में- "अंग्रेजी शिक्षा द्वारा एक ऐसे वर्ग को जन्म देना था जो हमारे और करोड़ों लोगों जिनपर शासन किया जा रहा है, सम्पर्क बनाने वाले के रूप में बने, जो केवल खून और रंग से भारतीय हो, परंतु रूचि, विचार, नैतिकता एवं बुद्धि से पूर्णत: अंग्रेज हो।"[२] अत: भारत में वर्ग के विकास में आंग्लो भारतीय सम्पर्क, अंग्रेजी शिक्षा और पूँजीवादी व्यवस्था का प्रमुख हाथ रहा है।

1.3. युगीन परिस्थिति और मध्यवर्ग : वर्ग-चेतना का सूत्रपात

अंग्रेजों ने भारत में आकर भारत की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया। भारत ने प्राचीन राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक ढाँचे को बाधित किया। राजनीतिक क्षेत्र में अंग्रेजों ने शोषण की नीति अपनाकर भारतीय कृषि-व्यवस्था को भयंकर क्षति पहुँचाई। भारतीय कृषि के नष्ट-भ्रष्ट होने से नौकरी के आशा में गाँव के लोग शहरों में आने लगे। आर्थिक-व्यवस्था के परिवर्तन के साथ ही एक नया वर्ग (मध्यवर्ग) का धीरे-धीरे विकास होने लगा।

शहरों में आकर नई शिक्षा (अंग्रेजी) प्राप्त एक नया बाबू वर्ग विकसित हुआ, जिसके द्वारा अंग्रेजी शासन की नींव भारत में मजबूत होती गई। जीविका के तलाश में गाँव से शहरों की ओर

१. इण्डियन हेरिटेज - हुमायुँ कबिर, पृ॰ 114
२. इण्डिया टुडे - फ्रेंक मोरेस, पृ॰ 53

आकर एक वर्ग मजदूरों की जिंदगी गुजारने लगा। "इन्हीं विस्थापित गाँवों के लोगों में से कुछ लोग शहरों में जाकर पल्टन के सिपाही, दफ्तरों के चपरासी, पुलिसमैन, गुमाश्ते, नौकर, रसोइए, चौकीदार या छोटी-मोटी फेरीवाले सौदागर बन गए।"[१] अत: गाँव से शहर में रोजी-रोटी की तलाश में आए विभिन्न वर्गों के लोगों का एक समुदाय बन गया। यह वर्ग भी मध्यवर्ग का एक अंग ही था। इस प्रकार शिक्षित,अर्द्धशिक्षित और अशिक्षित सभी प्रकार के लोगों के सम्मिलन से शहरी मध्यवर्ग के लोगों की संख्या में दिन पर दिन बृद्धि हुई।

भारतीय मध्यवर्ग के अंतर्गत विभिन्न जाति और समुदाय के लोग सम्मिलित हैं। इस नवनिर्मित मध्यवर्ग का प्रमुख आधार आर्थिक है। भारतीय मध्यवर्ग में एक ओर अत्यंत गरीब, निरीह निम्न मध्यवर्ग है तो दूसरी ओर उच्च मध्यवर्ग, जो प्राय: उच्चवर्ग से समता स्थापित करना चाहता है। अन्य देशों की तुलना में भारतीय मध्यवर्ग को अनेक विषम परिस्थितियों से गुजरना पड़ता है। इस वर्ग पर पाश्चात्य शिक्षा और संस्कृति का प्रभाव अधिक पड़ा है। अपनी विषम आर्थिक परिस्थितियों के अलावा मध्यवर्ग राजनीतिक एवं सामाजिक समस्याओं से भी आक्रांत रहता है। "संसार भर के आर्थिक संघर्ष ने गहन रूप से नवीन मध्यवर्ग को भी सामान्य यातना का अंग बना दिया। राष्ट्रीय आय में भारी कमी तथा आवश्यक व्यय-भार को ही स्वीकार करने की दृष्टि से वेतनों में प्राय: कमी की जाने लगी; अनियमित भुगतान रोक दिए गए, पदोन्नतियों को कम किया जाने लगा, कर्मचारियों की संख्या कम की जाने लगी, समय से पहले ही पेन्शनें दी जाने लगी और अनिवार्य रूप से कर्मचारियों को सेवा से मुक्त किया जाने लगा।"[२]

सम्पूर्ण विश्व के मध्यवर्गीय लोगों की आर्थिक स्थिति एकदम दयनीय है। आर्थिक दुर्व्यवस्था से आक्रांत मध्यवर्ग में अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। शिक्षा और बेकारी की समस्याएँ इसे इर्ष्यालु, अनुदार और कृपण बना देती है। उच्चवर्ग का व्यक्ति अपनी सामाजिक और आर्थिक स्थिति के कारण सुरक्षित होता है। उसे संघर्ष करने की जरूरत नहीं पड़ती। निम्नवर्ग का व्यक्ति भाग्यवादी होता है। वह सबकुछ भाग्य के सहारे छोड़ देता है। लेकिन उपरोक्त दोनों तत्वों के अभाव में "मध्यवर्ग असंतुष्ट और संघर्षप्रिय होता है और दूसरों की आलोचना करना न्यायोचित मानता है।"[३]

अन्य देशों के अनुरूप अपने असंतुलित फैलाव के कारण मध्यवर्ग के सामाजार्थिक आयाम के साथ-साथ भारतीय सामाजिक व्यवस्था में भी परिवर्तन आए हैं। धीरे धीरे प्राचीन मान्यताएँ खत्म होने लगी। रूढ़िवादी विचारों के प्रति नये मध्यवर्ग ने विद्रोह किया। सामाजार्थिक समस्याओं ने मध्यवर्ग को प्राय: स्वार्थी बना दिया। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में -

---

१. हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग - मंजुलता सिंह, पृ॰ 13-14
२. इनसाक्लोपीडिया आफ दि सोशल साइन्सेज- भाग- दस-ग्यारह
३. इण्डियन हैरिटेज - हुमायुँ कबिर, पृ॰ 117

"हमारे समाज का नया मध्यवर्ग परिवार की मर्यादा और स्तर कायम रखने तथा रोजी कमाने में ही सारी शक्ति लगा रहा है। इस वर्ग की राष्ट्रीय चेतना के ह्रास के साथ उसकी नैतिक शक्ति भी बहुत कुछ क्षीण होने लगी है। लोग अपने से ऊँचे स्तर के व्यक्ति को देखते हैं और उसमें किसी प्रकार का चारित्रिक उत्कर्ष, त्याग की भावना तथा अन्य उच्चादर्श न पाकर स्वयं भी उसी जीवन-शैली को अपनाने को प्रेरित हो रहे हैं।"[१]

सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं के अलावा धार्मिक और राजनीतिक समस्याएँ भी मध्यवर्ग को बराबर आक्रान्त किए रहती है। धार्मिक रूढ़ियों का सबसे अधिक विरोध मध्यवर्ग ने ही किया है। राजनीतिक क्षेत्र में भी मध्यवर्ग ही अग्रणी रहा है। मध्यवर्ग अपनी विभिन्न समस्याओं से आक्रांत रहकर भी जीवन के प्रति आस्था और विश्वास इसने जगाया है। आज मध्यवर्ग का व्यक्ति आर्थिक प्रतिद्वन्द्विता के कारण अनेक लांछनों और उपेक्षाओं को सहते हुए अपने नैतिक आदर्श के बल पर अनेक क्रूर-कुचक्रों से लड़ रहा है।

भारत के नव विकसित मध्यवर्ग ने प्राचीन रूढ़िवादी जाति व्यवस्था, सती दाह प्रथा, अनमेल विवाह तथा विधवा की असहाय अवस्था के विरूद्ध आवाज उठाकर नवीन लोकतांत्रिक आदर्शों ने अनुकूल भारतीय समाज का पुनर्गठन करने का सर्वप्रथम प्रयास किया। यह मध्यवर्ग 19वीं शताब्दी में विभिन्न सामाजिक एवं राजनीतिक आन्दोलनों में आगे रहा है। 20 वीं शताब्दी में मध्यवर्ग ने नए प्रगतिशील तत्वों को आत्मसात किया। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद भारतीय मध्यवर्ग की व्यक्तिवादी चेतना मजबूत होती गई। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद बदलते राजनीतिक परिवेश और आजादी के बाद की महंगाई और बेकारी ने मध्यवर्ग के विद्रोही स्वर को और भी मुखर किया। इस स्वर को नवयुग के उपन्यासकारों में मुखरित होता दिखाई पड़ता है।

आधुनिक काल में चारों ओर नवजागरण की एक लहर आई। इस लहर में सदियों से दलित, शोषित, पीड़ित और व्यथित भारतीय नारी भी विद्रोही बनकर सामने आई। शिक्षा एवं समाज सुधार की भावना से ओत-प्रोत मध्यवर्ग की नारी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रगतिशील बनी। भारत की नवीन चेतना से परिपूरित शिक्षित नारी अनमेल विवाह का विरोध, विधवा विवाह का समर्थन, दहेज प्रथा का खंडन तथा वेश्यावृत्ति के उन्मूलन में सक्रिय दिखाई देती है। पाश्चात्य नारी के सम्पर्क के कारण नवीन नारी-समुदाय में हीनता का भाव समाप्त होता जा रहा है और दिन पर दिन उसमें समान अधिकार की भावना प्रबल होती जा रही है। वह अपने को पुरूषों के कारा से मुक्त करना चाहती है। युगों की आर्थिक एवं सामाजिक दासता की बेड़ी को भी वह तोड़ चुकी है। अतः नव-चेतना से युक्त पुरूषों के साथ नारी भी कदम से कदम मिलाकर नव निर्माण की

---

१. राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबंध - नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ॰ 11

दिशा में निरंतर बढ़ती जा रही है।

मध्यवर्ग समाज को प्रेरित करने वाला वर्ग है। सतत् संघर्ष और समाज सुधार की कामना ही इस वर्ग का लक्ष्य है। यह वर्ग, वर्ग-संघर्ष मिटाकर समाज में समाजवादी व्यवस्था द्वारा क्षमता का विस्तार करना चाहता है। वर्ग-संघर्ष प्रगति का सूचक है। बिना संघर्ष के समाज की प्रगति संभव नहीं है। "जितना ही समाज में शोषित वर्ग, शोषक वर्ग के प्रति बलवती विद्रोह की भावना लेकर बढ़ेगा, उतना ही शोषित वर्ग की प्रगति होगी।"[१]

सामाजिक प्रगति के लिए वर्ग-संघर्ष को समाप्त करने का प्रश्न मध्यवर्ग ने ही उठाया है और समाजवादी प्रक्रिया को समाज के लिए आवश्यक मानकर एक वर्गहीन समाज का स्वप्न देखनेवाला यदि कोई वर्ग है तो यही मध्यवर्ग है। युगीन विभिन्न परिस्थितियों से आक्रांत मध्यवर्ग के पुरूष और नारी समुदाय में वर्ग-चेतना का सूत्रपात होता है। हिन्दी साहित्य के विख्यात समालोचक डॉ राजेश्वर गुरू का कहना है-"सामंती सभ्यता के साथ भारतीय ग्राम्य व्यवस्था का अंत हुआ और पूँजीवादी साम्राज्यवाद के छत्र-छाया में विकसित हुआ। पूँजीवाद के साथ वर्ग-चेतना आई और मध्यवर्ग अस्तित्व में आया।"[२]

1.4. हिन्दी के वर्ग-सचेतन उपन्यास और उनमें नागार्जुन का स्थान

हिन्दी उपन्यास साहित्य को प्रेमचन्द ने तिलस्मी और ऐय्यारी तथा मनोरंजन से निकल कर जीवन के वास्तविक धरातल पर खड़ा किया। प्रेमचन्द का युग राष्ट्रीय जागरण के विकास और प्रसार का युग कहा जा सकता है। इस युग के अधिकांश सामाजिक एवं राजनीतिक आन्दोलनों का प्रवर्तन मध्यवर्ग के द्वारा हुआ। मध्यवर्ग की समस्त चेतना तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों और अंधविश्वासों के उन्मूलन में सक्रिय रही है। "प्रेमचन्द उस विकासशील मध्यवर्ग के व्यक्ति थे, जो उपयोगिता पर आधारित नैतिकता को प्रश्रय देने में आस्था रखता था।"[३] औद्योगिक विकास और जर्जर होती हुई सामन्ती व्यवस्था ने भी मध्यवर्ग को पर्याप्त प्रभावित किया है। मध्यवर्ग के बदलते हुए आदर्श और नवीन मान्यताओं का प्रेमचन्द के उपन्यासों में विशदता से वर्णन हुआ है।

प्रेमचन्द मूलत: मध्यवर्ग और निम्नवर्ग के लेखक थे। उनका मन मध्यवर्ग और निम्नवर्ग की समस्याओं के अंकन में विशेष रूप में रमा था। प्रेमचन्द के 'प्रेमाश्रम' उपन्यास में जमींदार वर्ग और कृषक वर्ग का चित्रण प्रधान रूप से हुआ है। 'रंगभूमि' में प्रधान रूप से उच्चवर्ग तथा निम्नवर्ग का ही चित्रण है। ताहिरअली निम्न मध्यवर्ग का व्यक्ति है। उसके परिवार के माध्यम से

---

१. हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग - मंजुलता सिंह, पृ॰ 18
२. गोदान - (सं॰) डॉ॰ राजेश्वर गुरू के आलेख 'प्रेमचन्द के विचार', पृ॰ 3 से उद्धृत।
३. हिन्दी उपन्यास- डॉ॰ सुषमा धवन, पृ॰ 14

निम्न मध्यवर्ग की आर्थिक दशा, पारिवारिक कलह, झूठी शान-शौकत प्रदर्शनप्रियता आदि का अंकन हुआ है। 'गबन' प्रेमचन्द का, मध्यवर्ग की समस्याओं का उद्‌घाटन करने वाला सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। इसमें प्रथम बार मध्यवर्ग की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक प्रवृत्तियों की विस्तार से चर्चा की गई है। 'कर्मभूमि' मध्यवर्ग की विभिन्न चेतना को उजागर करने वाला उपन्यास है। इसमें पुरूष समाज से अधिक नारी समाज में राजनीतिक चेतना दिखाई देती है। सुखदा मजदूरों और किसानों का नेतृत्व करती है। मंजुलता सिंह के अनुसार 'कर्मभूमि' में - ''लेखक ने युगीन राजनीतिक वातावरण के मध्य में ही धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक सभी समस्याओं को प्रस्तुत करने का सफल प्रयत्न किया है।''[१] 'गोदान' भारतीय ग्रामीण जीवन के विविध पक्षों को उपस्थित करनेवाला श्रेष्ठ उपन्यास है। इसमें मध्यवर्ग की प्रेम, विवाह, स्त्री-पुरूष के अधिकार, दम्पत्ति के दायित्व, स्त्री-स्वातंत्र्य, देशप्रेम की चेतना, आर्थिक मान्यताएँ अभिव्यक्त हुई हैं। इसमें जमींदारों और मालिकों द्वारा किसानों और मजदूरों के शोषण को भी चित्रित किया गया है। इसप्रकार प्रेमचन्द की कृतियों में उभरता हुआ प्रगतिशील मध्यवर्ग नैतिक मूल्यों की स्थापना करने में सफल हुआ है।

प्रेमचन्द के दृष्टिकोण से उनके युगीन उपन्यासकार प्रभावित रहे हैं। इस युग के अधिकांश उपन्यासकारों ने मध्यवर्ग की समस्याओं का विस्तार से विवेचन किया है। मध्यवर्ग के चित्रण की दृष्टि से प्रसाद जी का 'कंकाल' उपन्यास महत्वपूर्ण है। इसमें समसामयिक भारतीय समाज की सारी दुर्बलताएँ व्यक्त हुई हैं। 'कंकाल' का सबसे विद्रोही, दृढ़ और जीवनभर शारीरिक और मानसिक आघात सहने वाला पात्र विजय मध्यवर्गीय स्वतंत्र व्यक्तित्व का प्रतीक है। विश्वंभर नाथ शर्मा 'कौशिक' के उपन्यासों 'माँ', 'भिखारिणी' तथा 'संघर्ष' में मध्यवर्ग की सामाजिक समस्याओं का अंकन हुआ है। 'कौशिक' जी विशेष रूप से मध्यवर्गीय जीवन के बदलते हुए मानदण्डों के प्रति सजग एवं जागरूक थे। 'निराला' के 'अलका' नामक उपन्यास में प्रधान रूप से जमींदार और किसानों का संघर्ष है, परन्तु गौण पात्रों के द्वारा मध्यवर्ग के दृष्टिकोण तथा समस्याओं को भी प्रस्तुत किया गया है। 'निरूपमा' में मध्यवर्ग की बेकारी, शिक्षा, धार्मिक प्रवृत्ति, प्रेम तथा विवाह की समस्याएँ चित्रित हुई है। इसमें जमींदार और किसानों का भी संघर्ष वर्णित है।

प्रेमचन्द-युगीन उपन्यासकारों में भगवती प्रसाद वाजपेयी ने मध्यवर्ग की समास्याओं का अपने उपन्यासों में विस्तार से विवेचन किया है। 'प्रेम पथ', 'मिठी चुटकी', 'अनाथ पत्नी', 'मुस्कान', 'त्यागमयी', 'प्रेमनिर्वाह', 'पिपासा', 'दो बहनें' नामक उपन्यासों में मध्यवर्ग की सामाजिक समस्याओं के संकेत मिलते हैं। वाजपेयी जी ने मध्यवर्गीय पात्रों के माध्यम से युग की

१. हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग- मंजुलता सिंह, पृ॰ 109

व्यापक चेतना को भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। यथार्थवादी उपन्यासकार पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के 'चंद हसीनों के खतूत', 'बुधुआ की बेटी', 'शराबी', 'जीजी जी' तथा 'फागुन के दिन चार' नामक उपन्यासों में मध्यवर्ग का वर्णन मिलता है। समाज के घृणित पक्ष को अभिव्यक्त करने में तीनों वर्गों के पात्रों को उग्र ने चित्रित किया है। मध्यवर्ग के पात्रों की संख्या उच्चवर्ग तथा निम्नवर्ग की अपेक्षा कम है। निम्नवर्ग के साथ उग्र की सहानुभूति अधिक है, क्योंकि यह वर्ग शोषित है। उनके उपन्यासों में समाज, व्यक्ति एवं नियति के प्रति तीखे व्यंग हैं।

आधुनिक युग को पश्चिम के दो मनीषियों (फ्रायड और मार्क्स) ने विशेष रूप से प्रभावित किया है। विश्व भर के साहित्यकारों की चिन्तनधारा को भी इन्होंने प्रभावित किया है। प्रेमचन्द परवर्ती हिन्दी के उपन्यासों में चित्रित मध्यवर्ग की चिन्तनधारा पर इनका व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है। फ्रायड से प्रभावित उपन्यासकारों ने जीवन की स्वस्थ और अस्वस्थ दोनों प्रवृत्तियों का अंकन किया है। मार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से प्रभावित उपन्यासकारों ने मध्यवर्ग की आर्थिक विषमताओं को उभारते हुए मध्यवर्ग में नई चेतना लायी है।

प्रेमचन्द परवर्ती युग में जैनेन्द्रकुमार के उपन्यासों में मध्यवर्गीय समाज की नवीन चेतना मुखरित हुई है। उनकी 'परख' उपन्यास में मध्यवर्ग की प्रेम-विवाह, विधवा विवाह और मध्यवर्ग की आर्थिक समस्याओं को विस्तार से चित्रित किया गया है। इसमें मध्यवर्ग के पात्रों के माध्यम से धर्म तथा ईश्वर का उपहास किया गया है। 'सुनीता' उपन्यास में मध्यवर्ग के पारिवारिक जीवन तथा क्रांतिकारियों के बाहरी जीवन का द्वन्द्व चित्रित किया गया है। इसमें मध्यवर्ग की विवाहित नारी के स्वतंत्र प्रेम की समस्या को उजागर किया गया है। 'त्यागपत्र' में मध्यवर्ग के स्वच्छंद प्रेम की समस्या को उठाया गया है। 'कल्याणी' में मध्यवर्ग की प्रेम, विवाह, धर्म, अर्थ, राजनीति, पूर्व तथा पश्चिम की संस्कृति के विरोध तथा आर्थिक समस्याएँ भी मिलती हैं। 'सुखदा' में मध्यवर्ग की प्रेम, विवाह और अर्थ की समस्या को उठाया गया है। आर्थिक विषमता किस प्रकार पारिवारिक कलह का रूप धारण कर पति-पत्नी के संबंध-विच्छेद का कारण बन जाता है, इस उपन्यास में चित्रित किया गया है। 'विवर्त' में मध्यवर्ग की सामाजिक एवं आर्थिक समस्या प्रधान रूप से चित्रित है। 'व्यतीत' में उच्च मध्यवर्ग और मध्यवर्ग की प्रेम और अर्थ की समस्या वर्णित है। अत: जैनेन्द्र के मध्यवर्गीय पात्र रूढ़ि और अंधविश्वास का विरोध करते हैं और वर्ग भेद को मिटाकर समाज के स्वरूप को बदलना चाहते हैं।

इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों में मध्यवर्ग के कुंठित पात्रों का मनोविश्लेषणात्मक चित्रण के साथ-साथ मध्यवर्ग की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं धार्मिक समस्याएँ भी चित्रित हैं। 'लज्जा' उपन्यास में मध्यवर्ग के व्यक्तियों की कामुक प्रवृत्ति का चित्रण मिलता है। 'संन्यासी' में मध्यवर्ग की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक और मनोवैज्ञानिक समस्याओं का विवेचन किया गया है। 'पर्दे की रानी' उपन्यास में मध्यवर्ग की सामाजिक एवं नैतिक समस्याओं का अंकन

हुआ है। 'प्रेत और छाया' में मध्यवर्ग की सामाजिक और आर्थिक समस्याएँ चित्रित हैं। साथ ही इसमें मध्यवर्ग की नारी की प्रतिहिंसा, प्रतिशोध तथा विद्रोह की प्रवृत्ति भी मिलती है। 'निर्वासित' उपन्यास में मध्यवर्ग की नारी की चेतना सशक्त रूप में प्रस्तुत की गई है। इस उपन्यास का समस्त मध्यवर्ग शोषक वर्ग के प्रति विद्रोह करता है। 'मुक्तिपथ' में मध्यवर्ग की सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक समस्याओं का विशद चित्रण मिलता है। 'जिप्सी' उपन्यास में नवीन युग की चेतना को चित्रित किया गया है। इसमें उच्च एवं निम्न वर्ग के संघर्ष की कहानी है। 'जहाज का पंछी' उपन्यास में एक ऐसे मध्यवर्गीय युवक की कथा है जो कलकत्ता के विषमतापूर्ण सामाजिक घेरे में फँसकर भटकता है, पर अपनी बौद्धिक चेतना से नित नूतन पथ का अनुशरण करता है। इसमें मध्यवर्ग की आर्थिक विषमता भी चित्रित है।

वर्ग-सचेतन उपन्यासों में यशपाल के उपन्यासों का महत्वपूर्ण स्थान है। इनके उपन्यासों के प्रधान स्वर आर्थिक और राजनीतिक है। यशपाल कट्टर मार्क्सवादी माने जाते हैं। उनके उपन्यासों के मध्यवर्गीय पात्र साम्यवाद समर्थक और गांधीवाद के आलोचक हैं। 'दादा कमरेड' उपन्यास में मध्यवर्ग की राजनीतिक समस्याओं के साथ सामाजिक समस्याएँ भी उठाई गई हैं जिसमें नारी स्वाधीनता, विवाह, विधवा समस्या, परिवार नियोजन आदि प्रमुख हैं। 'देशद्रोही' में मध्यवर्ग की राजनीतिक विचारधारा के अलावा सामाजिक समस्याओं को उठाया गया है। 'पार्टी कामरेड' में मध्यवर्ग की नारी समस्या तथा राजनीतिक समस्याएँ वर्णित हैं। 'झूठा सच' के समस्त पात्र बुद्धिजीवी हैं और उनके व्यक्तित्व पर मार्क्सवादी विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव है। इसमें राजनीतिक और सामाजिक समस्याएँ चित्रित हैं। इस उपन्यास में मध्यवर्ग की शिक्षा एवं बेकारी की समस्या को प्रमुखता दी गई है। 'बारह घंटे' लघु उपन्यास में मध्यवर्ग की प्रेम तथा विवाह, विधवा तथा विधुर जीवन की समस्याएँ चित्रित हैं।

भगवतीचरण वर्मा के 'पतन', 'तीनवर्ष', 'टेढ़े मेढ़े रास्ते', 'आखिरी दाँव', 'अपने खिलौने', 'भूले बिसरे चित्र', 'सामर्थ्य और सीमा', 'थके पाँव' तथा 'रेखा' वर्ग सचेतन उपन्यास हैं, जिनमें मध्यवर्ग के विभिन्न समस्याओं को उठाया गया है। 'पतन' उपन्यास में मध्यवर्ग की सामाजिक एवं आर्थिक समस्या को प्रस्तुत किया गया है। 'तीन वर्ष' उपन्यास में मध्यवर्गीय समाज की अनेक समस्याओं में सामाजिक एवं आर्थिक समस्याएँ प्रमुख हैं। सामाजिक समस्याओं के अन्तर्गत प्रेम, विवाह, सेक्स तथा वेश्या की समस्या तथा आर्थिक समस्याओं में निम्न-मध्यवर्ग की पैसे के अभाव में टूटती हुई जिन्दगी का चित्रण है। 'भूले बिसरे चित्र' प्रमुख रूप से मध्यवर्गीय समाज से संबंधित उपन्यास है। इसमें मध्यवर्ग की सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याएँ चित्रित हैं। 'थके पाँव' मध्यवर्गीय, निम्न मध्यवर्गीय जीवन की झाँकी प्रस्तुत करनेवाला उपन्यास है। समय की माँग के अनुसार अपने उपन्यासों में नारी की समस्या को वर्माजी ने प्रगतिशील दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है।

वर्ग सचेतन उपन्यासों में अज्ञेय के 'शेखर: एक जीवनी' और 'नदी के द्वीप' महत्वपूर्ण हैं। इसमें मध्यवर्ग के विद्रोही व्यक्तित्व मिलते हैं। इन उपन्यासों में मध्यवर्ग की व्यक्तिगत कुंठा, अनास्था, क्षोभ और समाज के प्रति घृणा की भावना दिखाई पड़ती है। अज्ञेय के मध्यवर्गीय पात्र हारते और खीझते हुए भी समाज की मान्यताओं के आगे झुकते नहीं है। 'नदी के द्वीप' में मध्यवर्ग के व्यक्तियों की आदर्शवादी भावना और मानसिक कुंठाएँ अभिव्यक्त हुई हैं। इसमें मध्यवर्ग की प्रेम, विवाह, सेक्स, कुंठा, प्रदर्शन तथा हीनता की समस्या अभिव्यक्त हुई है।

उपेन्द्रनाथ अश्क रचित 'सितारों का खेल', 'गिरती दीवारें', 'राख', 'बड़ी-बड़ी आँखें', 'पत्थर अल पत्थर', 'शहर में घूमता आईना' आदि वर्ग-सचेतन उपन्यास हैं। इन उपन्यासों में मध्यवर्ग की आर्थिक विषमताओं का चित्रण मिलता है। 'सितारों का खेल' में आधुनिक युवतियों की महत्वाकांक्षा, लालसा, स्वच्छन्दता और विवशता का सजीव चित्रण मिलता है। इसमें निम्नवर्ग की आर्थिक विषमता और सेक्स सम्बन्धी कुंठा का अंकन किया गया है। चेतन नामक पात्र अपनी साली के अनमेल विवाह के प्रति मन ही मन आक्रोश व्यक्त करता है। 'गर्म राख' में मध्यवर्गीय युवती की कहानी वर्णित है। अर्थ की समस्या से जूझता मध्यवर्गीय युवक खुलकर प्रेम नहीं कर सकता और वह विवाह से हिचकता है। इस उपन्यास में मध्यवर्ग की राजनीतिक चेतना की भी अभिव्यक्ति हुई है। 'बड़ी बड़ी आँखें' उपन्यास में मध्यवर्ग की नैतिक चेतना को देखा जा सकता है।

वर्ग-सचेतन उपन्यासों में अमृतलाल नागर का 'महाकाल', 'बूँद और समुद्र' प्रमुख हैं। मुट्ठी भर चावल के लिए 'महाकाल' का प्रत्येक पात्र अपनी आबरू से खेलता है। लेकिन निम्न मध्यवर्गीय पात्र पांचू जीने के अधिकार के लिए प्रयत्न करता है। वह सोचता है कि सत्ताधारी पूँजीपतियों का अत्याचार ज्यादा दिन चलनेवाला नहीं है। जन-शक्ति, जनक्रांति सत्ताधारियों के स्वार्थ के किले तोड़ देगी। 'बूँद और समुद्र' में वनकन्या, महीपाल और कर्नल मध्यवर्ग की सशक्त बूँदें हैं जो समाजरूपी सागर को सुव्यवस्था प्रदान करना चाहती हैं। मध्यवर्ग की आस्थावान बूँदें समाज को निश्चित रूप से बदलेंगी, इसी विश्वास के बल पर वनकन्या और सज्जन अपने जीवन को समाज सेवा में अर्पित करते हैं।

फणीश्वरनाथ 'रेणु' के 'मैला आँचल', 'परती परिकथा', 'दीर्घतपा', 'जुलूस' वर्ग-सचेतन उपन्यास हैं, जिनमें मध्यवर्ग की समस्याओं की ओर संकेत किया गया है। 'मैला आँचल' में मेरीगंज के सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। इसमें मध्यवर्ग की राजनीतिक चेतना सर्वत्र विद्यमान है। इसका मध्यवर्ग भविष्य के लिए आस्थावान है और अपने सपने को साकार करने के लिए भी प्रयत्नशील है। 'दीर्घतपा' में मध्यवर्ग के नारी समाज का सजीव चित्रण हुआ है। इसमें नारी की कुंठाओं, आशाओं और विश्वासों का अंकन किया गया है। 'जुलूस' उपन्यास में पाकिस्तान से आए हुए बंगाली शरणार्थियों की

समस्याओं का चित्रण हुआ है। मध्यवर्ग की पवित्रा बंगाली शरणार्थियों का नेतृत्व प्रदान करती है। वह मध्यवर्ग के पुरूष पात्र नरेश वर्मा के सम्पर्क में आकर विपत्तिग्रस्त जनमानस के लिए अपने जीवन को समर्पित कर देती है।

डॉ॰ रांगेय राघव द्वारा रचित 'घेरौंदा' उपन्यास में प्रेम की समस्या के साथ विद्यालय जीवन की बढ़ती हुई राजनैतिक चेतना का भी वर्णन हुआ है। इस उपन्यास में मध्यवर्ग के देश की गरीबी और समाज में फैली कुरीतियों को भी नष्ट करने में प्रयत्नशील हैं। 'विषादमठ' उपन्यास में निम्न मध्यवर्ग तथा निम्नवर्ग की आर्थिक विषमताओं का चित्रण हुआ है। 'सीधा सादा रास्ता' उपन्यास में पात्रों के माध्यम से मध्यवर्ग की समाजवादी चेतना को अभिव्यक्त किया गया है।

देवराज के 'पथ की खोज', 'बाहर भीतर', 'रोड़े और पत्थर' तथा 'अजय की डायरी' वर्ग सचेतन उपन्यास हैं, जिनमें शिक्षित मध्यवर्ग की समस्याओं का अंकन किया गया है। 'पथ की खोज' में मध्यवर्ग के पात्रों के माध्यम से जीवन के प्रति नए एवं स्वस्थ दृष्टिकोण का संकेत मिलता है। स्त्री और पुरूष के शाश्वत संबंधों में समाज की खोखली मान्यताएँ तथा जीवन के झूठे आदर्श को टूटते हुए दिखाया गया है। इस उपन्यास में मध्यवर्ग की राजनीतिक चेतना का भी प्रतिफलन हुआ है। 'बाहर-भीतर' उपन्यास में मध्यवर्ग के पात्रों के माध्यम से वैयक्तिक स्वातंत्र्य की रक्षा तथा सामाजिक रूढ़ियों और जर्जरित मान्यताओं के प्रति विद्रोह दिखाया गया है। 'रोड़े और पत्थर' उपन्यास में निम्न मध्यवर्ग के परिवार की आर्थिक विवशताओं का यथार्थ चित्रण मिलता है। 'अजय की डायरी' उपन्यास में शिक्षित मध्यवर्गीय पात्रों के द्वारा शिक्षा-क्षेत्र में फैली हुई अव्यवस्था, अनैतिकता एवं आक्रोश दिखाया गया है। लेकिन ये पात्र नैतिकता, धार्मिक प्रभाव और विश्वास को नहीं छोड़ते।

नई पीढ़ी के उपन्यासकार अमृतराय ने वर्ग-चेतना से प्रेरित होकर वर्ग-वैषम्य से पीड़ित मानव के जीवन की करूण कहानी को अपने उपन्यासों 'बीज', 'नागफनी का देश' तथा 'हाथी के दाँत' में प्रस्तुत किया है। 'बीज' उपन्यास का पात्र सत्यवान वर्ग-संघर्ष की चेतना मजदूरों में उभारना चाहता है। वह मार्क्स एवं एंगेल्स का 'कम्युनिष्ट घोषणा पत्र' पढ़कर नई चेतना का अनुभव करता है। 'नागफनी का देश' उपन्यास में मध्यवर्ग के कुंठित एवं असफल पारिवारिक जीवन का वर्णन मिलता है। इस उपन्यास में मध्यवर्गीय जीवन की यथार्थ और कल्पना के बीच की दूरी को मध्यवर्ग के प्रेम और विवाह के द्वारा प्रदर्शित किया गया है। 'हाथी के दाँत' उपन्यास में निम्न मध्यवर्ग से संबंधित पात्र ठाकुर के शोषण के शिकार बनते हैं। मध्यवर्ग की नवीन चेतना से मुक्त नारी पात्र रत्ना ठाकुर के अवैध पुत्र से मिलकर ठाकुर साहब के विरोध में जुलूस निकालती है और उसका नेतृत्व स्वयं करती है।

धर्मवीर भारती के 'गुनाहों का देवता' और 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' वर्ग-सचेतन उपन्यास हैं। 'गुनाहों का देवता' में शिक्षित शहरी मध्यवर्ग और 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' में शिक्षित तथा

अशिक्षित ग्रामीण मध्यवर्ग की समस्याओं का यथार्थपूर्ण अंकन किया गया है।

मार्क्सवादी विचारधारा के रचनाकार नागार्जुन की पैनी दृष्टि राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक चेतना पर है। उनके द्वारा रचित उपन्यासों में 'रतिनाथ की चाची', 'कुंभीपाक', 'बलचनमा', 'वरूण के बेटे', 'दुखमोचन', 'नई पौध', 'उग्रतारा' आदि वर्ग-सचेतन उपन्यास हैं। इन उपन्यासों में चित्रित मध्यवर्ग के पात्र निम्नवर्गीय पात्रों में चेतना का संचार करते दिखाई पड़ते हैं। निम्न मध्यवर्गीय परिवारों के दुख-दर्द, पीड़ाओं, अपमान और तिरस्कारों को सहन करनेवाले नागार्जुन समाज के सभी शोषित-पीड़ित, गरीब किसान-मजदूर आदि सर्वहारा वर्ग के साथ सहानुभूति रखते हैं। इसलिए वे अपने समाज की वास्तविकता को अपने वर्गीय दृष्टिकोण; सर्वहारा वर्ग के दृष्टिकोण से देखते हैं। बच्चन सिंह बलचनमा के विषय में लिखते हैं- ''बलचनमा की कथा वहाँ से शुरू होती है जहाँ गोदान समाप्त होता है, यानी मजदूर से।''[१]

नागार्जुन विचारों से मार्क्सवादी माने जाते रहे हैं किन्तु उनकी वैचारिकता यत्र-तत्र मार्क्सवाद को छोड़कर आगे बढ़ती है। वे निम्न वर्ग के शोषण से क्षुब्ध एवं आक्रोश युक्त हैं। किसानों को दु:ख भरी जिन्दगी से मुक्ति दिलाने के लिए संघर्ष का नारा देते हैं। वे निम्नवर्ग को उसके अधिकार दिलाना चाहते हैं। स्त्रियों के स्वतंत्रता एवं स्वावलंबन में बाधा पहुँचाने वाली सांस्कृतिक दुहाइयों की निन्दा करते हैं। वे समाज सुधार की भावना से प्रेरित हैं इसलिए समाज में व्याप्त रूढ़ियों, अंधविश्वासों और जाति -पाँति के ढकोसलों के खिलाफ अपनी लेखनी से प्रहार करते हैं। उनके पात्र नारी हो या पुरूष, स्वावलंबी एवं स्वाभिमानी हैं। ग्रामीण नवनिर्माण के लिए नागार्जुन की प्रगतिशील विचारधारा है कि वे स्वयं श्रम करें, अपनी समस्याओं के प्रति सतर्क रहें और अपनी समस्याओं को स्वयं सुलझावें। ''नागार्जुन किसी समस्या के समाधान हेतु किसी तीसरी शक्ति में विश्वास नहीं करते, बल्कि जो लोग समस्याग्रस्त हैं, उनके समूह और संगठन के द्वारा समाधान हेतु संघर्ष करने की प्रेरणा देते हैं।''[२]

नागार्जुन के उपन्यासों में आंचलिकता का अतिरिक्त आग्रह या मोह नहीं है। अपने उपन्यासों में ग्रामीण क्षेत्रों के राजनीतिक और सामाजिक-आर्थिक गतिविधियों का चित्रण करने के बावजूद वे आंचलिक कथाकार नहीं हैं। आंचलिकता का अतिक्रमण करने के कारण ही हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में वे महत्वपूर्ण उपन्यासकार हैं। देहाती जिन्दगी के समाजार्थिक यथार्थ की अभिव्यक्ति के माध्यम के तौर पर औपन्यासिक विधा के प्रयोग की लुप्तप्राय परम्परा को पुन: प्रतिष्ठित करने का प्रयास नागार्जुन ने किया। डॉ॰ यश गुलाटी के अनुसार-''नागार्जुन के रचनाकाल तक आते-आते सुधारवादी और हृदयपरिवर्तनवादी नुस्खों की अव्यावहारिकता के बारे में किसी

---

१. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास - बच्चन सिंह, पृ॰ 518
२. नागार्जुन का गद्य साहित्य - डॉ॰ आशुतोष राय, पृ॰ 163

संदेह की गुंजाइश बाकी नहीं रही थी, अतएव उनकी रचनाएँ इस कमजोरी से मुक्त प्रतीत होती हैं।''[१]

नागार्जुन के औपन्यासिक चरित्र रूढ़िवादी और धर्मभीरू नहीं हैं। वे रूढ़ियों और परम्पराओं से संघर्ष करते हैं और उन्हें तोड़ने का प्रयास करते हैं। भारत में रहनेवाली अस्सी प्रतिशत जनता और उनके जीवन-संघर्ष ही नागार्जुन के कथा साहित्य के मूल स्रोत हैं। नागार्जुन ने कभी भी अपनी लेखनी का इस्तेमाल भौतिक सम्पन्नता के लिए नहीं किया है। शोभाकांत के शब्दों में- ''कलम के ही बल पर ख्याति प्राप्त करनेवाले हमारे बाबूजी ने समकालीन अन्य कलमबाजों की तरह कोई भौतिक सम्पन्नता नहीं अर्जित की है।''[२]

इस तरह कहा जा सकता है कि नागार्जुन अपनी यथार्थ दृष्टि के बल पर अन्य समसामयिक उपन्यासकारों के समकक्ष दलित, शोषित जन के सच्चे हितैषी हैं और इस रूप में अपने कथ्य को साहित्यिक अभिव्यक्ति देने में सफल रहे हैं। वे न केवल सामान्य जन के प्रति सहानुभूति रखते हैं, बल्कि उनके संघर्ष में अपनी सक्रिय भूमिका भी निभाते हैं। इसीलिए ''अन्य कथाकारों की सहानुभूति जहाँ निम्नवर्ग के प्रति उथली दिखाई देती है, वहीं नागार्जुन की दलितों के प्रति पक्षधरता, नारी के प्रति मर्यादा, यथार्थ का अंकन, अभिव्यक्ति की सहजता तथा वस्तुपरक दृष्टि सहज ही उन्हें अन्य उपन्यासकारों से अलग खड़ा कर देती है।''[३]

---

१. प्रतिनिधि हिन्दी उपन्यास (भाग पहला) - डॉ॰ यश गुलाटी, पृ॰ 154
२. नागार्जुन: मेरे बाबूजी - शोभाकांत, पृ॰ 105
३. नागार्जुन का उपन्यास साहित्य : समसामयिक सन्दर्भ- डॉ॰ सुरेन्द्रकुमार यादव , पृ॰ 200

द्वितीय अध्याय

नागार्जुन के उपन्यासों में वर्ग-चेतना का क्रमिक विकास

2.1. नागार्जुन: व्यक्तित्व और कृतित्व

अपने माँ-बाप की छ: सन्तानों में अकेले जिंदा रहनेवाले (ठक्कन / वैद्यनाथ मिश्र / वैदेह / यात्री / बाबा) नागार्जुन का जन्म ज्येष्ठ पूर्णिमा 1911 ई॰ में ननिहाल के ग्राम सतलखा, पोस्ट-मधुबनी, जिला दरभंगा में हुआ। पैतृक निवास ग्राम-तरौनी, जिला दरभंगा (बिहार) में है। इनके पिता का नाम गोकुल मिश्र तथा माँ का नाम उमा देवी था। "बचपन से प्रारंभिक चार वर्ष तक ही माता का स्नेह-वात्सल्य नागार्जुन को मिला।"[१] नागार्जुन का विवाह 1931 ई॰ में हरिपुर गाँव की बारह वर्षीया अपराजिता देवी के साथ हुआ। द्विरागमन 1934 ई॰ में हुआ। नागार्जुन के चार बेटे-शोभाकांत, सुकांत, श्रीकांत और श्यामाकांत तथा दो बेटियाँ उर्मिला और मंजु हैं।

गरीबी एवं अभाव के कारण बचपन में नागार्जुन ने गाँव की संस्कृत पाठशाला से ही संस्कृत की शिक्षा ग्रहण की। 1925 ई॰ में नागार्जुन ने 'लघुसिद्धांत कौमुदी' लेकर संस्कृत पाठशाला से 'प्रथमा' किया। इसके उपरांत गनौली (जिला मधुबनी) संस्कृत पाठशाला से व्याकरण में ही 'मध्यमा' किया। एक वर्ष तक पचगछिया (सहरसा) में शिक्षा ग्रहण की। बाद में वे शास्त्री बनने के लिए काशी पहुँचे। वाराणसी में चार वर्ष तक रहकर साहित्याचार्य की डिग्री ली। एक वर्ष तक कलकते में रहकर 'काव्यतीर्थ' किया। 1934 ई॰ में वैद्यनाथ मिश्र राहुल सांकृत्यायन के साथ यायावरी में निकल गए। यहीं से उन्होंने अपना उपनाम 'यात्री' रखा। 1941 ई॰ में वे घर वापस आये। ई॰ 1936 में वैद्यनाथ सिंहलद्वीप पहुँचे। कोलानिया (श्रीलंका) के पुराने विद्यापीठ में बौद्ध दर्शन का अध्ययन किया और 1937 के आरंभ में नायक पाद धम्मानन्द से बौद्ध धर्म की दीक्षा ग्रहण की। यहीं दीक्षित होकर वैद्यनाथ मिश्र भिक्षु नागार्जुन बने। बिहार के किसान आन्दोलन में भाग लेने के कारण ई॰ 1939 और 1940 में दो बार जेल गए। ई॰ 1941 में जेल से रिहाई के बाद नागार्जुन ने भिक्खु परिधान का त्याग किया। 1948 ई॰ में गांधी हत्या पर लिखी

---

१. नागार्जुन का उपन्यास साहित्य : समसामयिक सन्दर्भ- डॉ॰ सुरेन्द्रकुमार यादव , पृ॰ 11

'शपथ', 'तर्पण' जैसी क्षोभ-व्यंजक कविताओं के लिए गिरफ्तार हुए। 1 जून 1975 ई॰ में वे जयप्रकाश नारायण के सम्पूर्ण क्रांति आन्दोलन में रचनात्मक भूमिका के चलते गिरफ्तार हुए। 26 मार्च 1976 ई॰ को गंभीर अस्वस्थता के कारण पटना हाइकोर्ट के निर्देश पर जेल से मुक्त हुए। इस प्रकार जीवन और जगत से कठिन संघर्ष करते हुए बाबा नागार्जुन 5 नवंबर 1998 ई॰ को बिहार राज्य के दरभंगा जिले के खाजा सराय में गुरूवार के दिन प्रातः 6-30 बजे अपने पार्थिव शरीर को छोड़कर शून्य में विलीन हो गए।

नागार्जुन का व्यक्तित्व एकदम साधारण था। वे मझोले कद और श्याम वर्ण के थे। दमा के कारण वे प्रायः अस्वस्थ रहते थे। प्रायः खद्दर का कुर्ता और पायजामा पहनने वाले नागार्जुन का रहन-सहन बहुत सादा था। उन्होंने आडम्बर को अपने पास तक फटकने नहीं दिया। अपने समकालीन युग के चमक-दमक में भी वे निम्न मध्यवर्गीय जीवन व्यतीत करते थे।''[१] वे स्वभाव से विद्रोही थे। यह विद्रोह उस परिवेश की देन था, जिसके बीच उन्होंने अपना जीवन बिताया था।

बचपन से लेकर बौद्ध धर्म की दीक्षा ग्रहण करने तक नागार्जुन का जीवन घुटन और अभावों से भरा रहा, परन्तु नागार्जुन ने अपनी सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों से निरंतर संघर्ष किया। ''अपने संघर्षशील जीवन में निम्न मध्यवर्गीय परिवारों के दुख-दर्द, पीड़ाओं, अपमान और तिरस्कारों को सहन भी किया है। यही कारण है कि नागार्जुन समाज के सभी शोषित-पीड़ित, गरीब किसान-मजदूर आदि सर्वहारा वर्ग के साथ पूरी सहानुभूति रखते हैं और इसलिए नागार्जुन अपने समाज की वास्तविकता को अपने वर्गीय दृष्टिकोण, सर्वहारा वर्ग के दृष्टिकोण से देखते हैं।''[२]

नागार्जुन खाने के बहुत शौकीन थे। मछली खाना वे बेहद पसंद करते थे। मछलियों में माँगुर उनकी प्रिय थी। फलों में अमरूद अत्यंत प्रिय था। वे खाने के जितने शौकीन थे, नहाने में उतने ही आलसी। स्वयं नागार्जुन के शब्दों में- ''कविवर त्रिलोचन सालों में एक बार नहा लेते हैं, तो नागार्जुन दस बरस में एक बार।''[३]

नागार्जुन के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि जब वे साहित्यकार, राजनेता, सामान्य व्यक्ति या किसी की भी आलोचना करते तब उसके दोनों पक्षों को प्रस्तुत करते थे। वे जाति-पाँति या क्षेत्रीयता की भावना से मुक्त थे। वे खुद की टिप्पणियों में भी अपने आपको माफ नहीं करते थे। विष्णुचन्द्र शर्मा के अनुसार- ''नागार्जुन का मन गरीब झोपड़ी, छोटे मध्यवर्ग की कोठरियाँ, गंदी बस्तियों और साधारण घरों में खूब रमता था। चुनाव की 'धमाचौकड़ी' करनेवाले दलाल बुद्धिजीवियों में आज अलग रंग या गोत्र के लेखक हैं।''[४]

---

१. नागार्जुन का गद्य साहित्य - डॉ॰ आशुतोष राय, पृ॰ 9
२. नागार्जुन का उपन्यास साहित्य : समसामयिक संदर्भ- डॉ॰ सुरेन्द्रकुमार यादव, पृ॰ 13
३. सापेक्ष - नरेन्द्र गौड़, जनवरी-मार्च 1995, पृ॰ 91
४. नागार्जुन : एक लम्बी जिरह - विष्णुचन्द्र शर्मा, पृ॰ 174

नागार्जुन : कृतित्व

नागार्जुन बहुमुखी प्रतिभा के रचनाकार थे। उन्होंने काव्य, उपन्यास, कहानी, निबंध, आलोचना, संस्मरण, यात्रावृत्त, बाल-साहित्य, अनुवाद आदि पर अपनी लेखनी चलाई। उन्होंने हिन्दी, संस्कृत, और मैथिली तीनों में साहित्य की रचना की है। बंगला में भी उनकी कुछ रचनाएँ उपलब्ध हुई हैं। वे एक कुशल संपादक भी थे। उनकी कृतियाँ निम्नलिखित हैं-

1. उपन्यास

नागार्जुन द्वारा रचित कुल बारह उपन्यास उपलब्ध होते हैं, जिनमें दो मैथिली और दस हिन्दी में रचित हैं। उन्होंने पहला उपन्यास 'पारो' मैथिली में ही लिखा, जिसका प्रकाशन मई 1946 ई॰ में पटना से हुआ। मैथिली में रचित एक अन्य उपन्यास 'नवतुरिया' हिन्दी के उपन्यास 'नई पौध' से साम्य रखता है, क्योंकि इन दोनों के पात्र और कथावस्तु एक ही हैं। 'पारो' का हिंदी अनुवाद कुलानन्द मिश्र ने किया और उसका प्रकाशन 1975 ई॰ में हुआ। नागार्जुन के उपन्यास निम्नलिखित हैं- 1. रतिनाथ की चाची (1948) 2. बलचनमा (1952) 3. नई पौध (1953) 4. बाबा बटेसरनाथ (1954) 5. वरूण के बेटे (1957) 6. दुखमोचन (1957) 7. कुंभीपाक (1960) 8. अभिनन्दन या हीरक जयन्ती (1962) 9. उग्रतारा (1963) 10. जमनिया का बाबा या इमरतिया (1968) 11. पारो (1975) 12. गरीबदास (1979)

2. कहानी

1. असमर्थदाता 2. ताप हारिणी 3. जेठा 4. काया पलट 5. विशाखा मृगारमाता 6. ममता 7. विषम-ज्वर 8. हीरक जयन्ती 9. हर्ष-चरित का पॉकिट एडीशन 10. मनोरंजन टैक्स 11. आसमान में चंदा तेरे 12. भूख मर गई थी 13. सूखे बादलों की परछाइयाँ आदि।

3. निबंध

1. मृत्युंजय कवि तुलसीदास 2. बुद्धयुग की आर्थिक अवस्था 3. मशक्कत की दुनिया 4. दिमागी गुलामी 5. होली: प्रकृति और परम्परा 6. ब्राह्मण : बुद्ध युग में 7. नई चेतना 8. सरस्वती का अपमान 9. अन्नहीनम् क्रियाहीनम् 10. राज्याश्रय और साहित्य जीविका 11. गाजीपुर किसान सम्मेलन 12. प्रेमचन्द एक व्यक्तित्व 13. हिन्दी की छाती पर.... 14. भ्रष्टाचार का दानव 15. दादा जी, आप रिटायर हो! 16. अग्रज तुम्हें प्रणाम 17. विषकीट 18. पेट का धर्म: इन्सान का धर्म 19. विलक्षण राहुल 20. एक पुरानी : नई कहानी 21. वन्दे मातरम् 22. दीपावली आदि।

4. आलोचना

आलोचना के अन्तर्गत नागार्जुन की एकमात्र कृति 'एक व्यक्ति: एक युग' का नाम लिया जा सकता है।

5. **संस्मरण**

क) मैं सो रहा हूँ ख) एक घंटा ग) आइने के सामने आदि।

6. **यात्रा साहित्य**

क) हिमालय की बेटियाँ ख) टिहरी से नेल्ङ ग) थो-लिङ महा विहार घ) आतिथ्य सत्कार ङ) सिंध में सत्रह महीने।

7. **नाटक**

नागार्जुन द्वारा रचित दो ऐतिहासिक नाटक हैं- क) अनुकम्पा ख) निर्णय

8. **बाल साहित्य**

क) मर्यादा पुरूषोत्तम ख) वीर विक्रम ग) कथा-मंजरी घ) अनोखा टापू ङ) होनहारों की दुनिया।

9. **काव्य संग्रह**

1. युगधारा (1953) 2. सतरंगे पंखोवाली (1959) 3. प्यासी पथराई आँखें (1962) 4. तालाब की मछलियाँ 5. खिचड़ी विप्लव देखा हमने (1980) 6. तुमने कहा था (1980) 7. हजार हजार बाहों वाली (1981) 8. पुरानी जूतियों का कोरस (1983) 9. रत्नगर्भ (1984) 10. ऐसे भी हम क्या! ऐसे भी तुम क्या! (1985) 11. आखिर ऐसा क्या कह दिया मैंने (1986) 12. इस गुब्बारे की छाया में (1990) 13. भूल जाओ पुराने सपने (1994) 14. अपने खेत में (1997)।

10. **खण्ड-काव्य**

भस्मांकुर (1970)

11. **हिन्दीतर कविता :**

1. ***संस्कृत कविताएँ :*** 'देश दशकम्', 'कृषक दशकम्', 'श्रमिक दशकम्', 'धर्मालोक शतकम्'।
2. ***मैथिली काव्य संग्रह :*** 'चित्रा', 'पत्रहीन नग्न गाछ'।
3. ***बंगला कविताएँ :*** 'आमि मिलिटारिर बुड़ो घोड़ा', 'ओई माताल युवक', 'एड्. जे. एन. यू.', 'पाथरेर शिल्प' और 'पलातक शिशिरेर द्विरागमन' आदि।

12. **पत्रिका सम्पादन :**

1. दीपक (1935) 2. विश्वबंधु 3. कौमी आवाज (1942-43)

साहित्यिक पुरस्कार एवं सम्मान

1. काव्य संग्रह 'पत्रहीन नग्न गाछ' के लिए सन 1968 ई॰ में साहित्य अकादमी पुरस्कार।

2. सन् 1988 ई॰ में उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा भारत-भारती पुरस्कार।
3. सन् 1993 ई॰ में मध्य प्रदेश सरकार द्वारा मैथिली शरण गुप्त सम्मान।
4. सन् 1993 ई॰ में बिहार सरकार द्वारा राजेन्द्र शिखर सम्मान।
5. सन् 1995 ई॰ में पश्चिम बंगाल हिन्दी अकादमी द्वारा राहुल सम्मान।
6. सन् 1994 ई॰ में साहित्य अकादमी के महत्तर सदस्य।

2.2. नागार्जुन के उपन्यास : पृष्ठभूमि

2.2.1. राजनैतिक परिस्थितियाँ एवं वर्ग-चेतना

भारत में अंग्रेजों ने लगभग दो सौ वर्षों तक शासन किया। इस अवधि के दौरान देश की दशा अत्यंत दयनीय थी। भारतीयों का शोषण करने के लिए अंग्रेजों ने विभिन्न हथकंडे अपनाए। अंग्रेजों द्वारा न केवल भारत के परंपरागत उद्योगों का ही नाश किया गया, बल्कि ब्रिटिश साम्राज्य के खर्च की पूर्ति के लिए नये-नये कर भी लगाए गए। उन्होंने इंगलैंड के ढंग की जमींदारी व्यवस्था लागू की, जिससे किसान केवल जमींदार का किरायेदार रह गया।

स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व देश में क्रांतिकारी उभार स्पष्ट दिखाई दे रहा था। सन 1992 के भारत छोड़ो आन्दोलन ने स्थिति को और भी विस्फोटक बना दिया था। ऐसे समय में ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने दमनात्मक रवैया अपनाया। यह आन्दोलन कांग्रेस के नियंत्रण से बाहर निकल गया। डॉ॰ रामविलास शर्मा इस आन्दोलन के विषय में लिखते हैं - "इसमें कम्युनिष्ट, गैर कम्युनिष्ट सभी वामपंथी शामिल थे और उनके साथ बहुत से कांग्रेस कार्यकर्ता भी थे। कांग्रेसी नेता बिल्कुल न चाहते थे कि यह आन्दोलन चलाया जाय, पर वे अंग्रेजों पर इस आन्दोलन का दबाव डालकर ज्यादा से ज्यादा अधिकार भी पाना चाहते थे।"[१]

चेतना सम्पन्न व्यक्तियों के प्रयास से अंग्रेजों से भारत को मुक्ति मिली। देश की स्वाधीनता से जिस मुक्ति की प्रबल कामना थी, वह बहुत कुछ अंशों में प्राप्त भी हुई, परंतु दूसरे स्तर पर उसका खण्डित एवं विकृत रूप भी उजागर हुआ। "आर्थिक वैषम्य, राजनीतिक विघटन, मूल्यों का पराभव, बढ़ती हुई कीमतें, परिवर्तित होनेवाले मानव संबंध, भ्रष्टाचार, नैतिक पतन और चारित्रिक संकट आदि के कारण भविष्य के प्रति कोई आशा ही शेष न रही। इस प्रकार मोह भंग की स्थितियाँ उत्पन्न हुई, जिनमें सबसे बड़ा योगदान देश के तात्कालीन विभाजन का था। यह न केवल देश का विभाजन था, वरन् मानव संस्कृतियों का विघटन था, मानव मूल्यों के विघटन का

---

१. मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य - रामविलास शर्मा, पृ॰ 334

चरमोत्कर्ष था, हत्याएँ, लूटपाट, रक्तपात और शरणार्थियों का लम्बा सिलसिला- आधुनिक सभ्यता एक बिन्दु पर आकर अभिशप्त खड़ी हो गई थी।''[१]

भारत के लोगों को राजनैतिक आजादी तो मिली, मगर आर्थिक-सामाजिक आजादी कभी नहीं मिली। लोगों के मन में आजादी की जो कल्पना थी, वह मात्र कल्पना बनकर रह गई। स्थिति और भी भयावह हो गई। जनता द्वारा चुने प्रतिनिधि ही उनका शोषण करने लगे। अपनी राजनीतिक स्वार्थ सिद्धि वे इनके द्वारा ही करने लगे।

अपने समय के राजनीतिक यथार्थ को हिन्दी के उपन्यासकारों ने अत्यंत जीवंतता से चित्रित किया है। बदलते युग सन्दर्भों के साथ राजनीतिक दूरभिसंधियों एवं उसके निरंतर पतित होते जा रहे चरित्र के विरूद्ध एक प्रतिपक्षी की सशक्त भूमिका निभाने की सतत् चेष्टा द्वारा उपन्यासकारों ने जनमानस में राजनीतिक चेतना जागृत की, यह नि:सन्देह कहा जा सकता है। प्रेमचन्द और उनके युग के उपन्यास इस तथ्य के प्रमाण हैं।

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में राजनैतिक चेतना को अत्यंत सफलता से अभिव्यक्त किया है। 'कर्मभूमि' राजनैतिक चेतना को अभिव्यक्त करने वाला एक सशक्त उपन्यास है। यह स्वतंत्रता संग्राम के विभिन्न आन्दोलनों का इतिहास है। इस उपन्यास में राजनैतिक चेतना को अभिव्यक्त करने वाले पात्र - अमरकांत, शांतिकुमार, सलीम तथा सुखदा हैं। 'मंगलसूत्र' उपन्यास में भी राजनीतिक चेतना के यत्र-तत्र संकेत मिलते हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में जिस नई चेतना और नई ऊर्जा का प्रवाह हुआ, हिन्दी साहित्य ने भी अपने को उससे युक्त पाया। यद्यपि रचना मानस ने इस चेतना और ऊर्जा को आजादी के तुरंत बाद ही आत्मसात् नहीं किया और उसके आने में थोड़ा समय लगा, फिर भी स्वतंत्रता का प्रभाव कलाकार के रचना-मानस पर स्पष्ट ही दिखाई पड़ता है। सन 1950 तक आते-आते यह प्रभाव समस्त भारतीय साहित्य में परिलक्षित होने लगता है।

प्रेमचन्द परवर्ती उपन्यासकारों में यशपाल प्रमुख हैं। उन्होंने अपने उपन्यास 'झूठा-सच', 'पार्टी कामरेड' एवं 'देशद्रोह' में राजनैतिक चेतना को उभारा है। यशपाल मार्क्सवादी विचारधारा के लेखक हैं। मार्क्स दर्शन का मुख्य आधार वर्ग-संघर्ष तथा सर्वहारा-वर्ग की क्रांति है। यशपाल के पात्र राजनीति में फैले भ्रष्टाचार को दूर करने के लिए प्रयासरत हैं। राजनीतिक समस्याओं के अंतर्गत भारत के स्वाधीनता संग्राम तथा स्वतंत्रता के उपरांत भारत में उत्पन्न समस्याओं का यशपाल ने आकलन किया है। कांग्रेसी, कम्युनिष्ट, समाजवादी, क्रांतिकारी दलों के सदस्यों को अपने उपन्यास का पात्र बनाकर उनके माध्यम से विभिन्न वर्ग की समस्याओं के विभिन्न पक्ष को

---

१. नागार्जुन का गद्य साहित्य - डॉ॰ आशुतोष राय, पृ॰ 63

प्रस्तुत किया है। ''दादा कामरेड से 'झूठा सच' तक मध्यवर्ग की राजनीतिक चेतना यशपाल के उपन्यासों में विकसित होती गई है।''[१]

भगवतीचरण वर्मा ने अपने उपन्यास 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' में सन् 1930 के आसपास की राजनीतिक हलचलों का विस्तार से विवेचन किया है। इस उपन्यास के क्रांतिकारी पात्रों का संबंध मध्यवर्ग से है। 'सामर्थ्य और सीमा' उपन्यास में वर्माजी ने स्वातंत्र्योत्तर औद्योगिक विकास की योजनाओं, उसकी कार्यप्रणाली, मिनिस्टरों की योजना संबंधी अज्ञानताओं, देश में बढ़ती हुई राजनैतिक दलबंदियों, बढ़ते हुए पूँजीवादी प्रभाव, जमींदारी उन्मूलन तथा उससे उत्पन्न जमींदारों की निराशाजनक स्थिति का वर्णन किया है।

प्रेमचन्दोत्तर युग में समाजवादी उपन्यासकारों ने समाज के यथार्थ को पूर्ण रूप से चित्रित किया है। रामदरश मिश्र लिखते हैं- ''समाजवादी उपन्यासों में सदैव सामान्य पिसी हुई जनता और जीवन की नवीन शक्तियों के प्रति सहानुभूति तथा उन्हें स्थापित करने का भाव तथा परोपजीवी, असंगतियों से ग्रस्त, झूठी शान से गर्वीले लोगों और सड़ी-गली प्राचीन जिंदगी के ठेकेदारों के प्रति कठोर आक्रोश दिखाई पड़ता है। साथ ही साथ जो राजनीतिक चेतना समाज में समय-समय पर जागृत होती गई, या कोई भयंकर अकाल पड़ा, कोई साम्प्रदायिक दंगा हुआ, उन सबका समावेश भी इन उपन्यासों में हुआ।''[२]

राजनीति की चक्की में पिसते मध्य एवं निम्न वर्ग के लोगों में धीरे-धीरे इन राजनीतिक तिकड़मों के प्रति आक्रोश पैदा होने लगा। इन आक्रोशों को चेतना सम्पन्न कथाकारों ने वाणी प्रदान की। यहीं से राजनीतिक परिस्थितियों से उद्वेलित होकर वर्ग-चेतना का सूत्रपात होता है। शोषित जनता राजनीतिज्ञों के हाथों की कठपुतली बनकर अब नहीं रहना चाहती। वह अपने अधिकार को प्राप्त करने के लिए संघर्ष करती है।

नागार्जुन ने अपने पूर्ववर्ती साहित्यकारों से प्रभाव ग्रहण कर अपने उपन्यासों में समसामयिक राजनीति को पूर्ण अभिव्यक्ति की है। वे आजादी के बाद सत्तावर्ग के चरित्र को अच्छी तरह जानते हैं। राजसत्ता में बुर्जुआ और सामंत-भूस्वामी वर्ग की साझेदारी है। आजादी इन्हीं सुखी-सम्पन्नों की सुख-सुविधा के लिए थी। परंतु नागार्जुन की सहानुभूति उस वर्ग के लोगों के साथ है जिन्होंने इमानदारी से राष्ट्रहित में राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया है। नागार्जुन के विचार में आजादी वास्तविक रूप में आर्थिक-सामाजिक नहीं मात्र राजनीतिक आजादी है। उन्होंने 'रतिनाथ की चाची', 'अभिनन्दन', 'बाबा बटेसरनाथ', 'बलचनमा', 'नई पौध', 'वरूण के बेटे' आदि उपन्यासों में राजनीतिक परिस्थितियों का चित्रण करते हुए वर्ग-चेतना को उजागर किया है।

---

१. हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग- मंजुलता सिंह , पृ॰ 265

२. हिन्दी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा - रामदरश मिश्र , पृ॰ 132-133

उन्होंने अपने उपन्यासों में मूलत: निम्न और मध्यवर्ग के पात्रों को राजनीतिक चालबाजियों से सतर्क रहने और संगठित होकर अपने हक की लड़ाई लड़ने में अग्रसर होते दिखाया है। निम्नवर्ग का कोई भी पात्र चाहे वह किसान, मजदूर और मछुए ही क्यों न हों, एकजूट होकर अपने अधिकारों के प्रति सचेत दिखाई पड़ते हैं। डॉ॰ सुरेन्द्रकुमार यादव के शब्दों में -''नागार्जुन ग्रामीण, किसान और मजदूर की जाति आदि से ऊपर उठकर, सामंती चेतना से निकलकर वर्गीय आधार पर संगठित करना चाहते हैं। आजादी के बाद के भारतीय ग्रामीण की राजनैतिक चेतना को नागार्जुन वस्तुत: वर्ग-संघर्ष के रूप में, वर्गीय चेतना के रूप में देखना चाहते हैं।''[१]

2.2.2. सामाजिक परिस्थितियाँ एवं वर्ग-चेतना

समाज के सुसंगठन एवं श्रम विभाजन के लिए जिस वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था प्राचीन काल में की गई थी, आगे चलकर उसका रूप विकृत हो गया। यह वर्णाश्रम धर्म भारतीय समाज-व्यवस्था की रीढ़ रहा है। कालांतर में उच्च एवं निम्न वर्णों की मान्यता से अनेक जातियों और उपजातियों में समाज का विभाजन हुआ। मध्ययुगीन ग्राम एवं कृषि-आश्रित अर्थव्यवस्था ने ही भारतीय जाति-व्यवस्था को एक विशिष्ट रूप दिया। इसमें कर्म और पेशे के अनुसार जातियों का विभाजन हुआ। ग्राम स्तर पर सभी जातियाँ एक-दूसरे पर आश्रित थीं। ब्राह्मण, ठाकुर आदि ऊँची जातियों से लेकर नाई, कहार, धोबी, दर्जी, लुहार, बढ़ई, धुनियाँ, बुनकर, माली, हरिजन आदि सभी के अपने-अपने कर्म थे। इनमें से अधिकांश थोड़ी बहुत खेती करने के साथ ही अपना-अपना पेशेवर कार्य भी करते थे। इसके लिए भू-स्वामियों और बड़े काश्तकारों की ओर से उन्हें प्रत्येक फसल पर एक निश्चित मात्रा में अनाज दिया जाता था।

गाँव की व्यवस्था के समुचित संचालन का काम गाँव की पंचायतें किया करती थीं। इसके मुखिया और पंचों में ठाकुर, ब्राह्मण, साहूकार-महाजन और अन्य प्रमुख जातियों के प्रतिनिधि होते थे। पंचायत का फैसला सबके लिए मान्य होता था। गाँव की अधिकांश जातियों की अपनी अलग पंचायत भी होती थी, जो आस-पास के गाँवों के स्वजातीय लोगों द्वारा मिलकर बनती थी। ये पंचायतें जहाँ प्रत्येक जाति के आपसी विवाद और उनके व्यापक हितों के मसलों को सुलझाती थीं, वहीं जातीय कर्मानुष्ठान के बंधनों को भी दृढ़ करती थीं। इस जाति या बिरादरी से निष्कासन एक बहुत बड़ा सामाजिक दंड माना जाता था। प्रत्येक व्यक्ति अपनी जातीय एकता के प्रति सजग रहता था। इस सहज व्यवस्था को असहज और शोषणमूलक बनाने में सामन्तवाद के प्रमुख स्तंभ

---

१. नागार्जुन का उपन्यास साहित्य : समसामयिक संदर्भ - डॉ॰ सुरेन्द्र कुमार यादव, पृ॰ 125-126

ब्राह्मण-पुरोहित वर्ग का विशेष हाथ है। वेद, शास्त्र, पुराण आदि की आड़ में इस समुदाय ने अनेक कर्मकाडों और अनुष्ठानों की योजना द्वारा नीची जातियों के शोषण का मार्ग प्रशस्त किया। डॉ॰ इन्द्रमोहन कुमार सिन्हा के अनुसार- "ब्राह्मण लोग दूसरे की कमाई पर मौज उड़ाते थे। वे निम्न श्रेणी के यजमानों से कसकर बेगार लेते थे। कभी-कभी तो इस तरह के बेगार को अदा करने में उनकी जान तक चली जाती थी।"[१]

तत्कालीन भारतीय समाज में विभिन्न प्रकार की रूढ़ियाँ, अंधविश्वास, कुसंस्कार, वेश्या समस्या, विधवा समस्या, अनमेल विवाह, छूआ-छूत आदि की भावना व्याप्त थी। भारतीय समाज इन सड़ी-गली परम्पराओं में बंधे हुए पंगु बना हुआ था। इन कुरीतियों के बल पर ही स्वार्थी उच्चवर्ग के लोग अपनी हित साधन करते थे। मंदिरो और मठों में पुजारी और मठाधीश भी धर्म की आड़ में अनेक कुकर्म करते थे। दीन-हीन जनता ऐसे लोगों की चंगुल में फँसकर अपना सर्वस्व खो रही थी। सबसे दयनीय स्थिति नारियों की थी, जो विभिन्न प्रकार से शोषित हो रही थी। वृद्ध एवं बेमेल विवाह के कारण वेश्या बनने को मजबूर थी। पति एवं ससुराल वालों के अत्याचार से तंग आकर चुपके से वह घर छोड़कर बाहर निकल जाती थी और ऐसे स्वार्थी तत्वों के हाथों चढ़ जाती थी, जो उन्हें वेश्या-वृत्ति के लिए मजबूर कर देता था। निम्न जाति के लोगों को मंदिर प्रवेश की मनाही थी। वह ब्राह्मणों और ठाकुरों की कुएँ से पानी नहीं ला सकती थी। अनपढ़ ग्रामीण स्त्री-पुरूष तो इन कुसंस्कारों के शिकार थे ही, पढ़े-लिखे लोग भी उससे मुक्त नहीं थे।

भारतीय समाज परम्परा और आदर्श का मिश्रित रूप रहा है। परम्पराएँ सदैव हावी होना चाहती हैं। परम्पराओं और रूढ़ियों को मानने वाले चाहते हैं कि इसे आनेवाली पीढ़ी भी वहन करे। लेकिन आनेवाली जागरूक पीढ़ी इन गलित एवं दुर्गंधपूर्ण रूढ़ियों को तोड़ने की प्रयास करती है। वह भली-भाँति जानती है कि ये परम्पराएँ कभी भी न तो व्यक्ति की हित साधन कर सकती है न समाज की, न देश की और न विश्व की। इन गलित कुरीतियों के विरूद्ध आवाज उठाने का प्रयास सर्वप्रथम मध्यवर्ग ने किया। क्योंकि निम्नवर्ग में इतना साहस ही नहीं होता कि वह अपना नेतृत्व करे और वर्ग संगठित होकर अपने ऊपर होनेवाले अत्याचार का विरोध करे। यह दायित्व मध्यवर्ग ने ही ग्रहण किया। कुसंस्कारों, कुरीतियों और अंधविश्वासों के प्रति विरोध की भावना ने ही वर्ग-संघर्ष को जन्म दिया।

शताब्दियों की राजनीतिक परतंत्रता ने भारत के सामाजिक जीवन को अत्यंत विषाक्त बना डाला। भारतीय समाज अनेक प्रकार की सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक अंधविश्वासों से जकड़ा हुआ

---

१. प्रेमचन्दयुगीन भारतीय समाज- डॉ॰ इन्द्रमोहन कुमार सिन्हा, पृ॰ 310

था। किंतु अंग्रेजों के सम्पर्क में आकर भारत के शिक्षित वर्ग उनकी संस्कृति से प्रभावित हुए, फलस्वरूप भारतीय जनता को नया मानदंड देने का प्रयत्न होने लगा। राजा राममोहन राय, पं. ईश्वरचन्द विद्यासागर, स्वामी विवेकानन्द, श्रीमती एनी बेसेन्ट, स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा महात्मा गांधी आदि प्रमुख व्यक्तियों ने इस कार्यभार को संभाला। ब्रह्म समाज के प्रवर्तक राजा राममोहन राय ने तत्कालीन समाज की परिस्थितियों तथा उसके दोषों का अनुभव कर एक व्यापक सामाजिक आन्दोलन शुरू किया जो सम्पूर्ण देश में व्याप्त हो गया। आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती का व्यक्तित्व सामाजिक क्षेत्र में क्रांतिकारी था। "प्राचीन संस्कृति का पुनरूत्थान, वेदों के प्रति श्रद्धा जागरण, शिक्षा संस्थाओं के निर्माण द्वारा शिक्षा का प्रचार, नारी जाति के प्रति समादर की भावना, निम्न जातियों के प्रति अस्पृश्यता की भावना का निवारण, पुरातन रूढ़ियों का परित्याग, इन सब कार्यों के लिए भारतीय जनता आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द की सदा ऋणी रहेंगी।"[१] गांधीजी का समन्वयात्मक दृष्टिकोण ने भारतीय जनता में आत्मबल, नैतिकता, दृढ़ता, उदारता और चारित्रिक गुणों का विकास किया। हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के द्वितीय चरण में गांधीवादी विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव है। ईसाई मत प्रचार की प्रतिक्रिया स्वरूप भारत में सामाजिक सुधार में एक नई चेतना आई। "इन धार्मिक आन्दोलनों तथा सामाजिक क्रांतियों के द्वारा बाल-विवाह, मिथ्या रूढ़ियों, जाति-भेद, धार्मिक मतभेद, समुद्र-यात्रा निषेध, दहेज प्रथा, पूँजीवाद, जमींदारी प्रथा और अंधविश्वासों का घोर विरोध किया गया।"[२] इन सुधारवादी आन्दोलनों का प्रभाव हिन्दी साहित्य में प्रेमचन्द की रचनाओं में स्पष्टत: परिलक्षित होता है।

साहित्यकार एक सचेतन व्यक्ति होता है। वह अपने परिवेश से अछूता नहीं रह सकता। युगीन समस्या तथा उसका निरूपण साहित्यकार का एक आवश्यक अंग है। विद्या सिन्हा के अनुसार- "अपने समय की परिवर्तनशील शक्तियों के साथ सरोकार रखते हुए रचनाकार जीवन के ठोस प्रसंगों को अनुभव में नियोजित करता है तथी सर्जनशीलता चरितार्थ होती है।"[३] प्रेमचन्द एक चेतना सम्पन्न रचनाकार थे। उनके पदार्पण से हिन्दी उपन्यास में युगान्तकारी परिवर्तन हुए। प्रेमचन्द से पूर्व उपन्यासों का सम्बन्ध जीवन से न था। प्रेमचन्द ने उपन्यास -साहित्य को कल्पना जगत से उठाकर यथार्थ की भूमि पर प्रतिष्ठित किया। "वे साधारण जनता की सुख-समृद्धि की कामना करनेवाले, जनजीवन का विकास चाहनेवाले ऐसे जनप्रिय कथाकार थे, जिनके हृदये में दरिद्रों, शोषितों और असहायों के प्रति गहरी और व्यापक करूणा थी, अत्यंत आर्द्र संवेदना थी। प्रेमचन्द ने प्रत्येक प्रकार के शोषण का विरोध किया, रूढ़ियों और संकीर्णताओं को तोड़ने की चेष्टा की, जनता को जगाया और जनवादी परंपरा को आगे बढ़ाया।"[४] प्रेमचन्द ने उपन्यासों में

---

१. हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ- डॉ॰ शिवकुमार शर्मा, पृ॰ 451
२. वही, पृ॰ 452
३. आधुनिक परिदृश्य : आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास - विद्या सिन्हा; पृ॰ XXXIII
४. प्रेमचन्दयुगीन भारतीय समाज- डॉ॰ इन्द्रमोहन कुमार सिन्हा, पृ॰ 38

समाजगत और जीवनगत विभिन्न समस्याओं का चित्रित किया है और उनका समाधान भी प्रस्तुत किया है। सरिता राय के अनुसार- ''स्वयं की तरह ही वे मध्यवर्ग से भी यह आशा करते थे कि वह शोषित-उत्पीड़ित जनता के कल्याण में अपनी क्षमताओं का उपयोग करें।''[१]

'सेवासदन' में समाज में प्रचलित दहेज प्रथा, अनमेल विवाह और वेश्या समस्या को परस्पर संबंधित कर एक व्यापक समाज का परिचय दिया गया है। 'वरदान' में अनमेल विवाह की समस्या की ओर इंगित मात्र किया गया है। 'प्रेमाश्रम' में कृषक जीवन की विपन्नता, जमींदारी शोषण के विरूद्ध आवाज, कृषक और जमींदार संघर्ष पर दृष्टिपात किया गया है। 'कायाकल्प' के समाज-चित्रण में पतनोन्मुख सामंती व्यवस्था, नारी समस्या और बहु विवाह प्रथा पर विशेष ध्यान दिया गया है। 'निर्मला' में अनमेल विवाह और दहेज की समस्या पर दृष्टिपात किया गया है। 'प्रतिज्ञा' में विधवाओं की सामाजिक-दशा का उल्लेख किया गया है। 'गबन' में नारी की आभूषणप्रियता, अनमेल विवाह, दहेज की समस्या का उल्लेख किया गया है। 'कर्मभूमि' में पारिवारिक जीवन की समस्या, पतिताओं की समस्या, छूआछूत की समस्या, अंत्यजों की मन्दिर प्रवेश, मादक-वस्तुओं का बहिष्कार, शैक्षणिक समस्या आदि पर दृष्टिपात किया गया है। 'गोदान' में ग्रामीण और नागरिक समाज की अनेक समस्याओं पर दृष्टिपात किया गया है। इसमें सभी वर्ग के पात्र अपने-अपने वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

प्रेमचन्द के समकालीन जयशंकर 'प्रसाद' ने 'कंकाल' में समाज के बाह्य अलंकरण में छिपी हुई उसकी यथार्थ नग्नता और उसके खोखले कंकाल का रूप चित्रण किया है तो 'तितली' में दाम्पत्य -जीवन संबंधी दृष्टिकोण को प्रकट किया है।

वृन्दावनलाल वर्मा के 'संगम' उपन्यास में निम्न मध्यवर्ग की समस्याओं का चित्रण हुआ है। निम्न मध्यवर्गीय पात्रों द्वारा दहेज-प्रथा, विवाह, पारिवारिक लड़ाई-झगड़ों और वर्णसंकर समस्या का चित्रण किया गया है। 'कुंडलीचक्र' उपन्यास में मध्यवर्ग की प्रेम तथा विवाह की समस्याएँ मिलती है। 'प्रेम की भेंट' उपन्यास में मध्यवर्ग की प्रेम, विवाह, विधवा तथा नारी के इर्ष्यालु वृत्ति की समस्याओं का चित्रण किया गया है। 'अचल मेरा कोई' उपन्यास में शिक्षित मध्यवर्ग की नारी-स्वतंत्रता की समस्या के अतिरिक्त प्रेम, विवाह, रूढ़िप्रियता, विधवा विवाह आदि समस्याओं का प्रसंगवश वर्णन हुआ है।

आ॰ चतुरसेन शास्त्री के 'बहते आँसू' अथवा 'अमर अभिलाषा' उपन्यास में मध्यवर्ग की समस्या के अतिरिक्त प्रेम, विवाह, रूढ़िप्रियता, विधवा विवाह आदि समस्याओं का प्रसंगवश वर्णन हुआ है।

---

१. उपन्यासकार प्रेमचन्द की सामाजिक चिन्ता - सरिता राय, पृ॰ 134

आ॰ चतुरसेन शास्त्री के 'बहते आँसू' अथवा 'अमर अभिलाषा' उपन्यास में मध्यवर्ग की विधवा समस्या प्रधान रूप से वर्णित है। 'आत्मदाह' उपन्यास में मध्यवर्ग की विवाह की समस्या को प्रमुख रूप से उठाया गया है। 'आभा' उपन्यास में मध्यवर्ग नारी की समस्याओं का अंकन हुआ है। 'सोना और खून' उपन्यास में शिक्षा, संस्कृति, विधवा समस्या, सती-प्रथा, वर्ण-व्यवस्था, पाखण्ड, ब्राह्मणत्व आदि का विस्तार से वर्णन हुआ है।

विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' के तीन महत्वपूर्ण उपन्यासों 'माँ', 'भिखारिणी' तथा 'संघर्ष' में मध्यवर्ग की सामाजिक समस्याओं का अंकन हुआ है। 'माँ' उपन्यास में मध्यवर्ग का सुधारवादी दृष्टिकोण प्रमुख है। सुलोचना अपने ममत्व, त्याग और सहानुभूति से परिवार को ऊँचा उठाने में सफल होती है। 'भिखारिणी' उपन्यास में उच्च मध्यवर्ग के प्रतिनिधि पात्रों के माध्यम से प्रेम और विवाह की समस्या को वर्णित किया गया है। 'संघर्ष' उपन्यास में नारी समाज की उच्च शिक्षा तथा स्वच्छन्द प्रेम की समस्या वर्णित है।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी के 'चलते-चलते' उपन्यास में मध्यवर्ग की विवाह एवं प्रेम की समस्या विस्तार से वर्णित है। 'यथार्थ के आगे' सामाजिक धरातल पर लिखा हुआ उपन्यास है। इसमें प्रेम और विवाह की समस्या प्रधान है। 'एक प्रश्न' उपन्यास मध्यवर्ग के संयुक्त परिवार की कहानी है। इसमें प्रेम, विवाह और दहेज प्रथा की समस्याएँ प्रमुख रूप से ली गई है। 'उग्र' की 'बुधुआ की बेटी' उपन्यास में मध्यवर्ग के काम-लोलुप और स्वार्थ वृत्ति को दिखाया गया है। 'शराबी' उपन्यास में वेश्या और शराब की समस्या का वर्णन है। 'जीजी जी' उपन्यास में विमाता की समस्या, विवाह की समस्या, स्त्री-शिक्षा, नारी विद्रोह, तलाक की समस्या प्रधान रूप से वर्णित है।

प्रेमचन्द-परवर्ती उपन्यासों मे समष्टि-मानस की उपेक्षा व्यक्ति मानस पर अधिक आग्रह है। मानवतावाद के व्यापक जीवन-दर्शन में प्रेमचन्द परवर्ती उपन्यासों को काफी प्रभावित किया है। प्रेमचन्द परवर्ती युग में जैनेन्द्र के उपन्यासों में सामाजिक समस्याओं का वर्णन मिलता है। इनके उपन्यासों मे मध्यवर्गीय समाज की नवीन चेतना मुखरित हुई है। 'परख' उपन्यास में प्रेम-विवाह, विधवा-विवाह की समस्याएँ वर्णित हैं। 'सुनीता' उपन्यास में प्रेम और विवाह का द्वन्द्व अत्यंत गंभीर रूप में प्रस्तुत किया गया है। स्वच्छंद प्रेम 'त्यागपत्र' उपन्यास की मूल समस्या है। 'कल्याणी' उपन्यास में पति-पत्नी के संघर्ष और टूटे हुए दाम्पत्य जीवन को चित्रित किया गया है। 'सुखदा' उपन्यास में मध्यवर्ग की नारी की समस्या को उठाया गया है।

इलाचन्द्र जोशी के 'संन्यासी' उपन्यास में मध्यवर्ग की प्रेम, विवाह,. धार्मिक संकीर्णता, नारी दुर्दशा तथा मध्यवर्ग की नारी के विभिन्न रूपों की विवेचना आदि समस्याएँ चित्रित हैं। 'प्रेत और छाया' में मध्यवर्ग की विवाह, प्रेम, जारज सन्तान आदि समस्याओं का वर्णन है। 'निर्वासित' उपन्यास में मध्यवर्ग की नारी की चेतना सशक्त रूप में प्रस्तुत हुई है। सामाजिक समस्या प्रेम और

विवाह तक सीमित है। 'मुक्तिपथ' में नारी जागृति के प्रश्न को उठाया गया है।

यशपाल के 'दादा कामरेड' में मध्यवर्ग की नारी की स्वतंत्रता और नैतिक मान्यताओं के प्रति उसकी आस्था की समस्या को चित्रित किया गया है। मध्यवर्ग की सामाजिक समस्याओं में देहद्रोही में प्रमुख रूप से विधवा समस्या, दाम्पत्य जीवन की समस्या और नारी के अधिकारों की समस्या चित्रित की गई है। 'मनुष्य के रूप' में मध्यवर्ग की सामाजिक समस्याओं के अंतर्गत प्रेम, विवाह, सम्मिलित कुटुम्ब की समस्याएँ प्रमुख रूप से आती हैं। 'झूठा सच' उपन्यास में प्रेम, विवाह, शिक्षा, नारी स्वाधीनता और अधिकार, पुरूष के अत्याचार एवं उदारता का वर्णन किया गया है।

भगवतीचरण वर्मा के 'पतन' उपन्यास में मध्यवर्ग की प्रेम, विवाह, विवाहोपरांत स्वच्छंद प्रेम का वर्णन किया गया है। 'आखिरी दांव' में भारतीय मध्यवर्गीय हिन्दू परिवार में नारी की समस्या को विस्तार से चित्रित किया गया है। 'भूले बिसरे चित्र' में संयुक्त परिवार, स्वच्छंद प्रेम एवं विलास, नारी की पराधीनता, दहेज-प्रथा आदि समस्याओं का उल्लेख किया गया है।

'अज्ञेय' के 'शेखर: एक जीवनी' में मध्यवर्ग की स्वतंत्रता पूर्व भारत में व्याप्त अंधविश्वास, जाति, धर्म, वैषम्य, पारिवारिक रूढ़िवादिता, स्वार्थपरता आदि का चित्रण हुआ है। 'नदी के द्वीप' में प्रेम और विवाह की समस्या को उठाया गया है। अमृतलाल नागर के 'बूँद और समुद्र' में मध्यवर्गीय समाज में फैली रूढ़ियों, अंधविश्वासों, मुहल्ले में रहनेवाले परिवारों के कटु और स्नेहपूर्ण संबंधों, व्यक्तिगत अच्छाई-बुराई, आशा-निराशा, आस्था-अनास्था, नैतिकता-अनैतिकता का विशद चित्रण हुआ है।

प्रेमचन्द के बाद दीर्घ अंतराल के उपरांत हिन्दी उपन्यासकारों का ध्यान गाँव की ओर गया। उन्होंने गहराई से इस जीवन को देखने का प्रयास किया। गाँवों की मूल समस्याओं को नये संदर्भ में उन्होंने देखा और गाँवों में उठ रही नवचेतना को और उसके गतिरोधी कारणों को पहचाना है। नागार्जुन ऐसे उपन्यासकार हैं जिन्होंने गाँवों में मध्य और निम्न वर्गों में उठनेवाली नवचेतना को अच्छी तरह पहचानकर अपने उपन्यासों में उसे नया स्वर दिया है। अपने पूर्ववर्ती उपन्यासकारों के उपन्यासों में निहित वर्ग-चेतना को और अधिक मुखर करने का प्रयास किया है। उन्होंने शोषित वर्ग को अचेतन अवस्था से चेतन कर अपने हक, अधिकारों की लड़ाई के लिए बाध्य किया है। नागार्जुन के औपन्यासिक पात्रों मे जयकिशोर, दुखमोचन, निर्मला, बलचनमा, गोनड़, मोहन माझी, दिगम्बर, माहेश्वर, वाचस्पति, कामेश्वर आदि प्रमुख हैं। ये पात्र प्रगतिशील विचारों वाले हैं। वे अपने हक के लिए निरंतर संघर्ष करते हैं और मध्यवर्ग के पात्र निम्नवर्ग के पात्रों में चेतना का संचार करते हैं। रामदरश मिश्र के अनुसार - "नागार्जुन की दृष्टि यथार्थवादी है, अत: वे इन पिछड़ी जातियों का चित्र खींचकर आदिम रस-चाह की तृप्ति नहीं करते, वरन उन्हें आधुनिक चेतना, जागरण और शक्ति से सम्पन्न कर उनके मानवीय अधिकारों से उन्हें

जोड़ते हैं।''[१]

2.2.3. आर्थिक परिस्थितियाँ एवं वर्ग-चेतना

भारत में वर्ग-चेतना के क्रमिक विकास को समझने के लिए उसकी आर्थिक परिस्थितियों को तज्जन्य कालखंड के अंतर्गत जानना संगत होगा, जो इस चेतना के जन्म और विकास में सहायक सिद्ध हुई। वस्तुत: भारत में अंग्रेजों का शासन लगभग दो सौ वर्षों तक रहा और इस अवधि में देश की दशा अत्यंत दयनीय थी। अंग्रेजों द्वारा भारतीयों का कई तरह से शोषण किया गया। लंकाशायर और मानचेष्टर के बड़े-बड़े कारखानों के लिए भारत से कच्चा माल भेजा जाता था और वहाँ के तैयार माल को भारतीय बाजारों में दोगुने दामों में बेचा जाता था। इस प्रकार भारतीयों को शोषण की दोहरी चक्की में पीसा जाने लगा। भारतीय नेताओं ने अंग्रेजों की नीति को समझा और इसी से उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रारम्भ में ही स्वदेशी रोजगारों पर बल दिया। अंग्रेजों द्वारा न केवल भारत के परंपरागत उद्योगों का ही नाश किया गया था बल्कि ब्रिटिश साम्राज्य के खर्च की पूर्ति के लिए नए-नए कर भी लगाए गए। इन्होंने इंगलैंड की ढंग की जमींदारी व्यवस्था लागू की, जिससे किसान केवल जमींदार का किरायादार रह गया। इसके अतिरिक्त जमीन को रेहन रखने और बेचने की अंग्रेजी पूँजीवादी कानून-व्यवस्था भी लागू कर दी गई। इन व्यवस्थाओं के लागू करने से भारत में एक ऐसे वर्ग का निर्माण हो गया जिसका ब्रिटिश साम्राज्य से गहरा संबंध स्थापित हो गया और आवश्यकता पड़ने पर साम्राज्य की रक्षा में इस वर्ग से उन्हें विशेष सहायता मिलने की आशा थी। तत्कालीन भारतीय जनता की स्थिति पर एम॰ एल॰ डार्लिंग लिखते हैं- ''भारत के विषय में सबसे अधिक विस्मयकारी तथ्य यह है कि उसकी जमीन अमीर है लेकिन उसकी जनता गरीब है।''[२]

अंग्रेजों द्वारा कृषि और उद्योग के संतुलन को नष्ट कर दिए जाने के फलस्वरूप भारत प्रधानत: कृषि प्रधान देश हो गया। कृषि पर विशेष दबाव पड़ने के कारण किसानों की आय घटने लगी और उन्हें अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ऋण का सहारा लेना पड़ा। किसान ऋण लेकर कभी उऋण नहीं हो पाता था और अंत में उसकी जमीन हड़प ली जाती थी। इस तरह से किसान धीरे-धीरे मजदूर बनने के लिए मजबूर होने लगे।

बीसवीं शताब्दी व्यापक भारतीय जनता के जागरण की शताब्दी मानी जाती है। इस सदी के प्रारम्भ से ही ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरूद्ध व्यापक तौर पर आन्दोलन होने शुरू हो गए, यद्यपि अंग्रेजों ने स्थिति को नियंत्रण करने के ख्याल से तरह-तरह के आर्थिक कार्यक्रमों को लागू करना शुरू किया और इस प्रकार बड़े पैमाने पर उद्योग-धंधों की शुरूआत की। भारतीय निम्न मध्यवर्ग शिक्षा और अन्य विकासयुक्त अवसरों से वंचित था। पूँजीपति शासक वर्ग ने छोटे-छोटे जमींदारों को

१. हिन्दी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा- रामदरश मिश्र, पृ॰ 232
२. प्रेमचन्दयुगीन भारतीय समाज- डॉ॰ इन्द्रमोहन कुमार सिन्हा, पृ॰ 9 से उद्धृत।

शोषण करने की पूर्ण स्वतंत्रता दे रखी थी। चारों ओर स्वेच्छाचारिता का साम्राज्य था। वेदप्रकाश अमिताभ के अनुसार –''जमींदारी उन्मूलन के बाद ग्रामांचल में कुछ नए सामंतों का उदय हुआ है। इनमें कुछ तो वे ही टनमना गए भूस्वामी हैं और कुछ पुराने ही सामंत नए रूप में 'शोषण', 'अन्याय' और 'अत्याचार' को यथावत् बनाए रखने के लिए प्रयत्नशील हैं। सामंत नया हो या पुराना उसकी मानसिकता रूढ़िवादी और जनविरोधी ही है।''[१]

हिन्दी साहित्य में पहली बार प्रेमचन्द की दृष्टि ग्रामीण जनता की दयनीय स्थिति पर पड़ी। प्रेमचन्द जमींदारों एवं पूँजीपतियों की मंशा को भली–भाँति जानते थे। उन्होंने ''हिंदी उपन्यास को पौढ़ता दी है। उन्हीं ने सर्वप्रथम भारतीय गाँवों के जीवन को गंभीरता से लिया है।''[२] प्रेमचन्द ने उत्तर प्रदेश के पूर्वीय गाँवों की स्थिति को चित्रित किया है। इस भू–भाग की स्थिति में बहुत अधिक बदलाव नहीं आया है। रामदरश मिश्र के अनुसार – ''प्रेमचन्द के उपन्यासों में समस्याएँ तरह–तरह की हैं, तरह–तरह के वर्ग और समाज चित्रित हैं, किन्तु मूल में मानो आर्थिक समस्या ही अंत: सलिला की भाँति बहती रहती है।''[३] प्रेमचन्द ने 'प्रेमाश्रम', 'कायाकल्प' और 'कर्मभूमि' उपन्यासों में गाँवों और किसानों की दलित दशा का चित्रण किया है। इसमें नगरवासी मध्यवर्गीय कार्यकर्ता बाहर से पहुँचकर वहाँ के विद्रोह को संगठित कर वाणी देते हैं। इन उपन्यासों में प्रेमचन्द ने गाँवों को समझने–समझाने की अपेक्षा, उन्हें संघर्ष और नवनिर्माण की दिशा देने का प्रयत्न अधिक किया है। गोदान में होरी की आर्थिक स्थिति का जैसा चित्रण किया गया है वह वाकई पाठकों को स्तंभित कर देने वाला है।

प्रेमचन्द के बाद भारत के स्वतंत्र होने तक गाँवों का चित्रण हिन्दी उपन्यासों में कम रहा है। सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' के उपन्यास 'अलका' में मध्यवर्ग के शिक्षित युवकों को बेकारी की समस्या से पीड़ित दिखाया गया है। विजय नामक पात्र इसका एक उदाहरण है। इस उपन्यास में पूँजी के असमान वितरण तथा शासकों के शोषण का संकेत भी दिया गया है। प्रेमचन्द परवर्ती उपन्यासों में यथार्थवाद की प्रवृत्ति प्रधान रूप से मिलती है। ''इन लेखकों ने मध्यवर्ग की आर्थिक विषमताओं के चित्रों को उभारते हुए मध्यवर्ग की नई जागरूक चेतना का स्वरूप प्रस्तुत किया है।''[४]

प्रेमचन्द परवर्ती युग में यशपाल के उपन्यास आर्थिक एवं राजनीतिक चेतना के वाहक हैं। आ॰ नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में– ''यशपाल का अनुभव क्षेत्र बड़ा है और वे विशाल और निर्बोध जीवन परिस्थितियों का चित्रण करने की क्षमता रखते हैं।''[५] यशपाल शोषण को अस्वीकार कर एक ऐसी व्यवस्था को देश में लाना चाहते हैं जिसमें धन श्रम से ही प्राप्त किया जा सके। अन्य

---

१. हिंदी के आंचलिक उपन्यासों में मूल्य संक्रमण – वेदप्रकाश अमिताभ, पृ॰ 116
२. हिन्दी उपन्यास बदलते संदर्भ – डॉ॰ शशिभूषण सिंहल, पृ॰ 62
३. हिन्दी उपन्यास: एक अन्तर्यात्रा – रामदरश मिश्र पृ॰ 37
४. हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग – मंजुलता सिंह, पृ॰ 180
५. आधुनिक साहित्य – नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ॰ 43

किसी प्रकार की युक्ति द्वारा अथवा धन से धन न कमाया जा सके। अत: श्रमिकों को श्रम का उचित मूल्य दिलाना तथा पूँजी के अनुचित संग्रह को रोकना यशपाल का उद्देश्य है।

मार्क्सवाद से प्रभावित हिन्दी उपन्यासकारों ने शोषकों की मानसिकता को पहचानकर उसकी स्तूप को ढहाने के लिए अपने उपन्यासों में सर्वहारा को सबल होता हुआ एवं संगठित होता हुआ चित्रित किया है। उनका विश्वास है कि भाग्य के भरोसे कोई अपना हक प्राप्त नहीं कर सकता। अपने हक की लड़ाई व्यक्तियों को खुद ही लड़ना पड़ेगा। यहीं से वर्ग-चेतना का सूत्रपात होता है।

काम पाने की तलाश में गाँवों से शहर की तरफ पलायन, फिर वहाँ की बेतहाशा भागती जिंदगी में अपना सबकुछ खो देने का दर्द-व्यक्ति को तोड़ देता है। दूसरी तरफ गाँवों में ब्राह्मणों, ठाकुरों की हवेलियाँ और वह सारी व्यवस्था जो युगों-युगों से शोषितों को दीनतर बनाती चली आ रही थी- आज पुरानी पड़कर ढह रही है- अब शोषण की बारी दूसरों की है। कलतक बंधुआ मजदूर बनकर रहनेवाला वर्ग आज अपने शोषण का बदला लेने पर अमादा है। हरिजन-सवर्ण की खूनी लड़ाईयाँ आज की बदली हुई ग्राम्य-व्यवस्था का सच है।

समाज का श्रमिक वर्ग अंग्रेजों की आर्थिक नीति के परिणामस्वरूप ही अस्तित्व में आया। ऋण के बोझ से दबा किसान, खेतिहर मजदूर बना। जब वहाँ भी उत्रृण न हो सका तो वह शहरों की ओर उन्मुख हुआ और मशीनी दुनियाँ की विभीषिका में खो गया। यहाँ पर अपने अधिकारों के लिए जागरूक मजदूरों ने पूँजीपतियों का विरोध किया, अपने शोषण के खिलाफ आवाज उठायी। अपने अधिकारों के प्रति सचेत मजदूर वर्ग के राष्ट्रीय स्तर पर संगठन बने। फलत: वर्ग-संघर्ष का जन्म हुआ। यह वर्ग चेतना शहरों से गाँवों में आयी और ग्रामीण शोषित जनता अपने हक की लड़ाई में अग्रसर हुई।

नागार्जुन ने अपने पूर्ववर्ती उपन्यासकारों से प्रभाव ग्रहण कर 'रतिनाथ की चाची', 'नई पौध', 'बाबा बटेसरनाथ', 'दुखमोचन', 'कुंभीपाक', 'वरूण के बेटे' और 'बलचनमा' नामक उपन्यासों में आर्थिक असमानता का चित्रण किया है। एक ओर उन्होंने समस्त सुख-सुविधाओं से पूरित पूँजीवादी धनाढ्य-वर्ग को चित्रित किया है, तो दूसरी ओर वह वर्ग है जो कड़ी मेहनत के बावजूद अपनी मौलिक आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकता। इन आर्थिक परिस्थितियों में अर्थाभाव को झेलते हुए निम्न वर्ग के लोगों में प्रतिक्रिया की सृष्टि होती है। यही प्रतिक्रिया उनके अंदर उत्पन्न होनेवाली वर्ग-चेतना है, जो उन्हें अपने अधिकारों और हक के लिए प्रेरित करती है। अत: वे संघबद्ध होते हैं और बड़ी से बड़ी ताकतों के साथ जूझ पड़ते हैं।

2.3. अंधविश्वास, कुसंस्कार और कुरीतियों का विरोध : नागार्जुन के उपन्यासों का सबल पक्ष

भारत गाँवों का देश है। गाँव अंधविश्वास, कुसंस्कार, कुरीतियों, पाखंड और रूढ़ियों को ढोते हुए खिसक रहे हैं। नागार्जुन अपने उपन्यासों के माध्यम से ग्रामों को मुक्ति दिलाना चाहते हैं। वे समाज सुधार का प्रयास करते हैं। उनकी लेखनी ने इन कुसंस्कारों पर प्रहार किया है। हिन्दू

जाति के साथ लिपटी निरर्थक रूढ़ियों को वे चमगादड़ कहकर उनकी खिल्ली उड़ाते हैं। नागार्जुन एक चेतना सम्पन्न रचनाकार हैं, अत: वे रूढ़ियों और कुसंस्कारों के विरूद्ध विद्रोह करते हैं। यही विद्रोह और विरोध उनके उपन्यासों का सबल पक्ष है।

रूढ़िवादी निम्न-मध्यवर्गीय परिवार में जन्मे नागार्जुन के मन में बचपन से ही विद्रोही प्रवृत्ति पनप रही थी। काशी में छात्रावास में रहते हुए एक घटना घटी। धर्मशाला में एक कमरे में एक तीर्थयात्री बुढ़िया की अर्द्धनग्न लाश सड़ रही थी। नागार्जुन ने सहपाठी मित्रों के प्रयास से एक चारपाई में बुढ़िया की लाश डालकर मणिकर्णिका घाट पर स्वयं दाह-संस्कार किया। उनके मन में सामाजिक, धार्मिक कुरीतियों, प्रवृत्तियों के विरूद्ध विद्रोह की भावना की प्रस्फुटन हुआ तथा सामाजिक-आर्थिक विषमताओं तथा धार्मिक आडम्बरों और रूढ़ियों के प्रति घृणा हो गई। यही घृणा उनके उपन्यासों के प्रगतिशील निम्न-मध्यवर्गीय पात्रों के माध्यम से विरोध के रूप में प्रतिफलित हुई। नागार्जुन ने अन्याय के विरूद्ध आवेश उत्पन्न कर उससे मुक्ति के लिए व्यावहारिक साधनों को भी अपने उपन्यासों में अपनाया है।

'रतिनाथ की चाची' उपन्यास में नागार्जुन ने धार्मिक अंधविश्वासों एवं साधुओं के पाखंडों तथा सामाजिक कुरीतियों का घोर विरोध किया है। गौरी के गर्भवती होने पर उसके गर्भ गिराने के लिए जयनाथ तारा बाबा के यहाँ जाता है। तारा बाबा उससे कहते हैं- 'भगवती त्रिपुर सुन्दरी का पंचाक्षर है, वह अवांचित गर्भ गिराने में अनुपम है।' यह कथन धर्म के गर्त में जाने का एक सशक्त उदाहरण है। वहीं दूसरी तरफ बुधना चमार की औरत बड़ी जात वालों की करतूतों का उस समय माखौल उड़ाती है, जब वह गौरी के गर्भपात के लिए बुलाई जाती है। वह कहती है-''माफ करना, बड़ी जातवालों की तुम्हारी यह बिरादरी बड़ी मलिच्छ, बड़ी निष्ठुर होती है मलिकाइन। हमारी भी बहु-बेटियाँ राँड हो जाती हैं, पर हमारी बिरादरी में किसी के पेट से आठ-आठ, नौ-नौ महीने का बच्चा निकालकर जंगल में फेंक आने का रिवाज नहीं है। ओह, कैसा कलेजा होता है तुम लोगों का।''[१] रतिनाथ के कुल्ली राउत के साथ तरकुलवा जाते समय तालाब के किनारे जल्दी-जल्दी संध्या करने पर राउत कहता है- 'तुम नील माधव उपाध्याय के वंशधर हो। फिर अपने कर्म-धर्म में इतनी हड़बड़ी क्यों दिखाते हो ?' रति जवाब देता है- 'अरे यहाँ कौन देखता है ? देखना चलकर तरकुलवा में, घंटा भर नाक न दबाए रहा, तो जो कहो।' ऐसा कथन धार्मिक आडम्बर का ही द्योतक है, जिसपर नागार्जुन ने व्यंग्य किया है।

नागार्जुन ने 'बाबा बटेसरनाथ' में धार्मिक अंधविश्वासों और सामाजिक कुरीतियों का घोर विरोध किया है। बहुत दिनों तक बारीश न होने पर रूपउली के ब्राह्मणों द्वारा ग्यारह लाख शिवलिंग बनाकर सामूहिक पूजा करने के बावजूद बारीश का न होना, बरहम बाबा को पाँच बकरे की बलि दे चुकने के बाद भी जद्दू के लड़के की शादी के लिए पचपन वर्ष की आयु तक किसी लड़की वाले का

---

१. रतिनाथ की चाची - नागार्जुन, पृ॰ 24

न पूछना आदि ऐसे स्थल हैं, जहाँ पर इन अंधविश्वासों का खण्डन किया गया है। नागार्जुन ने अपनी विचारधारा को मानव रूपधारी बटवृक्ष के द्वारा व्यक्त कराया है - ''मनुष्यों की बलि चाहनेवाले यक्ष, गंधर्व, देव-देवियाँ और ब्रह्म अब बाहर नहीं रह गए- मोटी जिल्दवाले पुराने पोथों की बारीक पंक्तियों के अन्दर आज वे नजर बंद हैं।''[१]

'जमनिया का बाबा' उपन्यास में पाखंडी साधुओं और उनके कुकर्मों का पर्दाफाश किया गया है। जमनिया का मठ जघन्य कृत्य एवं व्यभिचार का अंग बना हुआ है। अभयानंद नामक एक साधु के प्रयास से जमनिया मठ में रहनेवालों को जेल की हवा खानी पड़ती है। वह जमनिया के बाबा से कहता है- 'आपने दरबार में अच्छा गुंडा पाल रखा है। लगता है आपके दरबार की सबसे बड़ी सच्चाई यह गुण्डई ही है।' पिछड़ी और ग्रामीण जनता में साधुओं का क्या प्रभाव होता है और उनके जाल में फँसी जनता की क्या स्थिति होती है इसका पूर्ण चित्रण इस उपन्यास में किया गया है। महाअष्टमी की रात छः महीने के बच्चे की बलि दिए जाने पर इमरतिया के मन में प्रश्न उठता है- 'चण्डीमाता क्या सचमुच एक बच्चे के रक्त की प्यासी थी?' उसे जवाब मिलता है-''नहीं, चण्डी माता भला क्यों प्यासी रहेगी? यह सब इस बाबे के दिमाग की खामख्याली थी।''[२] इमरतिया का यह विचार नागार्जुन के विचार हैं, जो जमनिया मठ के बाबा की करतूतों का पर्दाफाश करता है। नागार्जुन ऐसे मठ और ऐसे पाखंडी बाबाओं से रूबरू कराकर निम्नवर्ग के लोगों में एक चेतना पैदा करना चाहते हैं, जिससे भविष्य की अनहोनी घटनाओं से बचा जा सके।

'दुखमोचन' उपन्यास में नागार्जुन ने अंधविश्वास और कुरीतियों का विरोध दुखमोचन नामक पात्र के माध्यम से कराया है। वह सबका विरोध सहते हुए माया और कपिल का असवर्ण पुनर्विवाह करवाता है। ग्राम की प्रगति में बाधक कुसंस्कारों के विरूद्ध मोर्चा तैयार करता है। टेकनाथ के बैल का आग में जलकर मर जाने पर रूढ़िवादी विचारवालों का प्रायश्चित के लिए टेकनाथ पर दवाब डालने पर दुखमोचन उसका विरोध करता है। क्योंकि उसका मानना है कि टेकनाथ ने जान-बुझकर बैल को आग में तो नहीं झोंक दिया था। यह मत बाबा नागार्जुन का है जो बुजुर्गों के दकियानूसी विचारों का दफन करते हैं।

'नई पौध' उपन्यास में नागार्जुन ने मैथिल ब्राह्मणों में प्रचलित रूपये के लालच में लड़की को बेचने तथा अन्य पारिवारिक कुरीतियों के विरूद्ध समाज के मध्यवर्ग की नई-पीढ़ी के संघर्ष और उनकी चेतना का चित्रण किया है। इस उपन्यास के नवयुवक बूढ़े-दूल्हा चतुरानन चौधुरी को बारात सहित वापस भगा देते हैं और बिसेसरी के साथ उसके अनमेल विवाह को रोक देते हैं। ''मध्यवर्ग के प्रतिनिधित्व करने वाले नवयुवक नवीन चेतना के वाहक हैं और अन्यान्य के प्रति

---

१. बाबा बटेसरनाथ - नागार्जुन, पृ॰ 53

२. जमनिया का बाबा - नागार्जुन, पृ॰ 85

सशक्त विद्रोह करते हैं। जर्जर रूढ़ियों तथा पुरानी सामाजिक मान्यताओं का खण्डन और विरोध नई पौध का उद्देश्य है''[१] वाचस्पति जैसे हजारों युवक नागार्जुन के सम्पर्क में आते रहे हैं। ''ऐसे युवा सामाजिक विकृतियों को खत्म करने के लिए हर हमेशा तैयार रहते हैं। अपने परिवार और तथाकथित युगीन शुभचिंतकों की डाँट-फटकार सुनते हुए तथा तरह-तरह की लांछना को सहते हुए भी इन सबका साहस नहीं टूटता है।''[२]

'उग्रतारा' उपन्यास में अनमेल विवाह एवं बलात्कार जैसी सामाजिक कुरीतिओं का विरोध किया गया है। उगनी और कामेश्वर के प्रेम-संबंध द्वारा लेखक ने यह विचार व्यक्त किया है कि यदि प्रेम के दोनों पक्ष साहस, अंधविश्वास और प्रगतिशीलता से ओतप्रोत हों तो सामाजिक रूढ़ियाँ कभी बाधक नहीं बन सकती। उग्रतारा का परिस्थितिवश भभीखन सिंह के साथ विवाह हो जाता है, पर उग्रतारा उसे कभी भी अपना पति नहीं मान पाती। लेखक ने इस अनमेल विवाह पर व्यंग्य किया है- ''स्त्री-पुरूष के बीच उम्र का इतना बड़ा फासला किस तरह माखौल उड़ा रहा था विवाह के संस्कारों का! बाबू भभीखन सिंह को कानूनी तौर पर इस बलात्कार का हक हासिल हुआ।''[३] भभीखन सिंह से गर्भवती हुई उगनी अपने पूर्व प्रेमी कामेश्वर के साथ विवाह कर लेती है, यह सामाजिक कुसंस्कार और कुरीतियों के घोर विरोधी होने का परिचायक है।

अत: सामाजिक एवं धार्मिक चेतना पर नागार्जुन की तीखी दृष्टि पड़ी है। उनका मानना है कि धार्मिक अंधविश्वासों, कुसंस्कारों एवं सामाजिक कुरीतियों से मुक्ति पाने के बाद ही जनकल्याणकारी समाज का निर्माण हो सकता है। सच्चा धर्म वही है जो मनुष्य में उदात्तता लाए। धर्म के नाम पर मानवीय संवेदना की बलि चढ़ते देख नागार्जुन जैसे सजग स्रष्टा विद्रोही हो उठते हैं। इसीलिए उन्होंने अपने उपन्यासों में अंधविश्वास, कुसंस्कार और कुरीतियों का घोर विरोध किया है। यही उनके उपन्यासों का सशक्त एवं सबल पक्ष है।

2.4. नागार्जुन के औपन्यासिक पात्र : युग-चेतना के संवाहक

नागार्जुन ने उपन्यासों की कथा ग्राम से ली है, इसलिए उन्होंने गाँव के निम्नवर्गीय पात्रों को अपने उपन्यासों में स्थान दिया है। इनके उपन्यासों में प्रतिनिधि और गतिशील दोनों प्रकार के चरित्र हैं। प्रतिनिधि चरित्रों के साथ नागार्जुन की पूर्ण सहानुभूति है। इनके प्रति नागार्जुन की दृढ़ आस्था है, क्योंकि इनके ही कंधों पर समाज के नवनिर्माण का दायित्व है। नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में मध्यवर्ग के पात्रों को प्रगतिशील वर्ग के रूप में चित्रित किया है, जो ''ग्रामीण जनता में चेतना और प्रगति के बीज बोते दिखाई देते हैं।''[४]

नागार्जुन ने अपने औपन्यासिक पात्रों को युगीन चेतना से सम्पन्न कर दिया है। वे इस चेतना के संवाहक हैं। वे अपने परिवार तथा युगीन शुभचिंतकों की डाँट-फटकार सुनने के बावजूद अपनी साहस नहीं खोते। नागार्जुन अपने पात्रों को स्वाभिमानी एवं स्वावलंबी बनाना चाहते हैं, जो अपनी समस्याओं का समाधान खुद कर सकें ताकि उन्हें किसी तीसरी शक्ति की परमुखापेक्षी नहीं होना

---

१. हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग - मंजुलता सिंह , पृ॰ 349
२. नागार्जुन मेरे बाबूजी - शोभाकांत, पृ॰ 145-146
३. उग्रतारा - नागार्जुन, पृ॰ 40
४. हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग - मंजुलता सिंह , पृ॰ 345

पड़े। प्रतिभावान युवकों को वे तेज-तर्रार बनाना चाहते हैं। शोभाकांत के शब्दों में- ''बाबूजी ऐसे लोगों से बहुत घृणा करते हैं, जो किसी न किसी कारण तेज-तर्रार प्रतिभावान युवकों को काहिल और कामचोर बनाकर अपने समय के कटु यथार्थ से अलग हटा देते हैं।''[१] डॉ॰ यश गुलाटी के शब्दों में- ''उनके चरित्र व्यक्ति चरित्र नहीं बन पाते, अपने परिवेश और वर्ग-चेतना के संवाहक चरित्र ही होकर रह जाते हैं।''[२] नागार्जुन आस्थावादी कथाकार हैं। वे मनुष्य की दुर्बलताओं से कभी निराश नहीं होते। इसलिए ''उनके पात्र कर्मपथ पर चलते समय गिरते हैं, गिरकर उठते हैं और उठकर चल पड़ते हैं।''[३] नागार्जुन के उपन्यासों के कथानायक युगीन परिस्थितियों से पलायन नहीं संघर्ष करते हैं।

'रतिनाथ की चाची' उपन्यास में ताराचरण और जयकिशोर प्रगतिशील विचारों के समर्थक हैं। वे युगीन परिस्थितियों में चेतना सम्पन्न औपन्यासिक पात्र हैं। जयकिशोर अपनी बहन गौरी की जीवन कहानी सुनकर भी उसके साथ दुर्व्यवहार नहीं करता। समाज की जर्जर परम्पराओं और नारी जीवन की विवशताओं को समझते हुए वह अपनी बहिन का अपमान भी नहीं करता, क्योंकि वह भली-भाँति जानता था कि एक तरूण विधवा को किन परिस्थितियों का मुकाबला करना पड़ता है।

ताराचरण इस उपन्यास का चेतना सम्पन्न एक अन्य पात्र है। उसकी रूचि सार्वजनिक प्रवृत्तियों में अधिक है। वह अपने सारे काम समाजहित और जनहित में करता है। गाँव के किसान भवन की मरम्मत से लेकर सड़क की मरम्मत करवाने तक का दायित्व वह खुद लेता है। बूढ़े समाजपति पुराना अधिकार कायम रखने के लिए हाथापाई करके कई बार हार चुके थे। राजा बहादुर दुर्गानन्दन सिंह जैसे व्यक्ति की परवाह किए बिना वह कहता है- ''जमाना बदल गया है, हम जब अंग्रेजों की नाक में कौड़ी बाँधते हैं तो राजाबहादुर की क्या बिसात?''[४]

'बलचनमा' उपन्यास का बलचनमा एक ऐसा पात्र जो सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों को देख तथा झेल चुका है। वह साम्यवादी चेतना से भरपूर एक जुझारू पात्र है। वह बड़ी से बड़ी ताकत से जूझने की शक्ति रखता है। अपने हक को प्राप्त करने के लिए उसके अन्दर चेतना का संचार सोराजियों को देखकर होता है। वह भली-भाँति जान चुका है कि सोराजी लोग बाबू-भैया होने के नाते गरीबों के दु:ख को कभी नहीं समझ सकते। इसीलिए वह सचेत हो जाता है कि- ''जैसे अंग्रेज बहादुर से सोराज लेने के लिए बाबू-भैया लोग एक हो रहे हैं, हल्ला-गुल्ला और झगड़ा-झंझट मचा रहे हैं उसी तरह जन-बनिहार, कुली-मजदूर और बहिया-खवास लोगों को अपने हक के लिए बाबू भैया से लड़ना पड़ेगा।''[५] इन्हीं विचारों के उदय होने के बाद बलचनमा स्वावलंबी बन जाता है और निम्नवर्ग के लोगों के अन्दर चेतना का संचार करता है। वह भाग्यवादी और पलायनवादी नहीं है। वह शोषित समाज का एक अंग है।

'वरूण के बेटे' उपन्यास का मोहन माझी चेतना सम्पन्न पात्र है, जो मछुओं में चेतना का

१. नागार्जुन : मेरे बाबूजी - शोभाकांत, पृ॰ 130
२. प्रतिनिधि हिन्दी उपन्यास (पहला भाग)- डॉ॰ यश गुलाटी, पृ॰ 171
३. नागार्जुन का गद्य साहित्य - डॉ॰ आशुतोष राय, पृ॰ 155
४. रतिनाथ की चाची - नागार्जुन, पृ॰ 144
५. बलचनमा - नागार्जुन, पृ॰ 85

संचार करता है। वह मछुओं को किसान सभा का सदस्य बनाने का प्रयास करता है ताकि एकजूट होकर शोषण के विरूद्ध आवाज उठाया जा सके। मोहन की प्रयास से सभी मछुए एकजूट होते हैं और अपनी पुश्तैनी गढ़पोखर पर सतघरा के जमींदार का अंत तक अधिकार नहीं होने देते। विरोधों के बावजूद उनकी चेतना कभी पश्त नहीं होती। मोहन माझी किसान प्रतिनिधियों का वार्षिक सम्मेलन भी करवाता है। उस सम्मेलन में एक प्रस्ताव द्वारा सतघरा के जमींदारों को आगाह किया गया- ''वे युग की आवाज को अनसूनी न करें, मलाही-गोढ़ियारी के मछुओं को गरोखर से मछलियाँ निकालने के पुश्तैनी हकों से वंचित करने की उनकी कोई भी साजिश कामयाब नहीं होगी।''[१] मोहन माझी श्रमजीवी वर्ग का इमानदार युवक है, जो अपने अधिकारों के प्रति सचेत है।

'नई पौध' उपन्यास के दिगम्बर तथा वाचस्पति झा मध्यवर्ग के शिक्षित युवक हैं। ये दोनों पात्र सामाजिक एवं राजनैतिक चेतना फैलाते हैं। वाचस्पति में समाज सुधार की भावना बहुत है। वह व्यक्ति की समस्या समाज की और समाज की समस्या समूचे देश की समस्या मानता है। वह विश्वेश्वरी के अनमेल विवाह की बातें सुनकर उसके उद्धार के लिए प्रस्तुत हो जाता है। वह विश्वेश्वरी के मामा दुर्गानन्दन से कहता है- ''आपलोग सामाजिक विषमता के कारण जिस मुसीबत में फँस गए थे, उसके बारे में दिगम्बर से मेरी काफी चर्चा हो चुकी है और हमने जो फैसला किया सो आपको मालूम हो गया होगा....व्यक्ति का संकट ही समाज का संकट है और समाज का संकट समूचे देश का संकट है।''[२] नई पौध के युवक भली-भाँति जानते हैं कि पुरानी सामाजिक मान्यताओं को पकड़े रहने से न व्यक्ति का कल्याण हो सकता है, न समाज का और न ही देश का। इसलिए गाँव के मुखिया भी इनके प्रति संवेदनशील बन जाते हैं। दिगम्बर और वाचस्पति नामक ये दोनों पात्र नवीन चेतना के वाहक हैं।

'दुखमोचन' उपन्यास का दुखमोचन प्रगतिशील विचारोंवाला युवक है। वह बदलते जमाने के अनुसार लोगों के अन्दर नई चेतना की संचार करने का प्रयास करता है। यह मध्यवर्ग का प्रतिनिधित्व करनेवाला पात्र है। दुखमोचन अपने सशक्त चरित्र से ग्रामीणों को प्रभावित कर उनमें सहयोग, सदाचार और उदारता जैसे गुणों का विकास करता है। सच्चा जनसेवक होने के कारण वह सेवा के मार्ग में कोई भेदभाव नहीं रखता। ग्राम की प्रगति में बाधक पुराने संस्कारों और विचारों के विरूद्ध मोर्चा तैयार करता है। टेकनाथ को बैल हत्या से मुक्ति, शिक्षा तथा चिकित्सा का प्रबंध, माया और कपिल का असवर्ण पुनर्विवाह, ग्रामवासियों के जले हुए घरों का निर्माण आदि सभी प्रगतिशील कार्य दुखमोचन ही सम्पन्न करता है। उसके जीवन का उद्देश्य मानव कल्याण ही है।

---

१. वरूण के बेटे - नागार्जुन, पृ॰ 109

२. नई पौध - नागार्जुन, पृ॰ 126

'उग्रतारा' उपन्यास का कामेश्वर मध्यवर्ग का प्रतिनिधि पात्र है। वह नई चेतना का प्रतीक है। वह उग्रतारा के उद्धार का प्रयास करता है। अपनी भाभी से प्रेरणा पाकर पराये गर्भ को ढोने वाली उग्रतारा से कामेश्वर शादी कर नई पीढ़ी के लिए एक मिशाल बन जाता है। साहस, आत्मविश्वास और प्रगतिशीलता के कारण ही उग्रतारा और कामेश्वर के बीच समाज की रूढ़ियाँ बाधक नहीं बन पाती है। कामेश्वर के प्रयास से ही उगनी जीवन के वास्तविक आनन्द को प्राप्त कर पाती है। उगनी कामेश्वर के संबंध में भभीखन सिंह को पत्र लिखती है- "उस आदमी का दिल बहुत बड़ा है। पराए गर्भ को ढोनेवाली अपनी प्रेमिका को फिर से, बिना किसी हिचक के, उसने स्वीकार कर लिया है। उसने मुझसे शादी कर ली है।"[१] कामेश्वर युगीन चेतना से ओत-प्रोत है। वह अपनी पूर्व प्रेमिका के उद्धार के लिए बहुत बड़ा कदम उठाता है। उसका यह कदम उसके प्रगतिशील विचारों एवं एकनिष्ठ प्रेमी होने का परिचायक है।

नागार्जुन के उपन्यासों में निम्नवर्ग या शोषित वर्ग का प्रतिनिधित्व करनेवाले पात्रों की संख्या काफी है। ये पात्र चेतना सम्पन्न हैं। उनमें पौरूष, उत्साह और दृढ़ प्रतिज्ञा है। वे समाज सुधार की भावना से प्रेरित हैं। वे स्वयं श्रम करते हैं और अपनी समस्या का समाधान भी स्वयं ही करने का प्रयास करते हैं। ये पात्र समूह या संगठन द्वारा संघर्ष करते हुए अपनी हक की माँग करते हैं। वर्गीय चेतना से युक्त नागार्जुन के औपन्यासिक पात्र अपने कंधों पर समाज के नवनिर्माण का दायित्व वहन करते हैं। वे टूट सकते हैं मगर झुकना नहीं जानते। नागार्जुन के वर्गीय पात्रों की यही सबसे बड़ी विशेषता है।

---

१. उग्रतारा - नागार्जुन, पृ॰ 115

तृतीय अध्याय

नागार्जुन के उपन्यासों में नारी : समाज सचेतनता की सबल अभिव्यक्ति

नागार्जुन प्रगतिशील लेखक हैं। उन्होंने कथानक का चयन प्रगतिशील परम्परा के अनुसार जनसामान्य से किया है। जनसामान्य में किसान, मजदूर और निम्न मध्यवर्ग के पढ़े-लिखे प्रगतिशील दृष्टिकोण के लोग भी सम्मिलित हैं। नागार्जुन जनसामान्य की आर्थिक विषमता, पीड़ा, अभाव, अपमान, संघर्ष को यथार्थवादी दृष्टि से उभारते हैं, साथ ही पुराने सम्बंधो, मूल्यों और स्थितियों की विभीषिका को चित्रित करता हुआ सर्वत्र उनमें उभरती दरारों को अनावृत्त करते हैं, तथा नये क्षितिजों की ओर संकेत करते हैं।

नागार्जुन के अपने उपन्यासों में नारी से सम्बंधित विभिन्न समस्याओं को उठाया है और उसका एक निश्चित समाधान भी प्रस्तुत किया है। उनके उपन्यासों में नारियों का व्यक्तित्व माता, पत्नी, प्रेमिका, भगिनी एवं भाभी के रूप में सजगता से उभरकर आया है। कुछ नारी पात्र पारम्परिक होने के बावजूद आधुनिक प्रवृत्तियों से ओत-प्रोत हैं। वे अन्याय एवं शोषण के विरूद्ध आवाज बुलंद करती हैं और अपनी सचेतनता को उजागर करती हैं। वे स्वावलंबी होकर पुरूषों की कारा से मुक्त होना चाहती हैं। अपने अधिकार की माँग करती हैं और अपने ऊपर होने वाले अन्याय के प्रति विद्रोही तेवर अख्तियार करती हैं।

3.1 नागार्जुन के नारी विषयक विचार: समीक्षा एवं मूल्यांकन

प्राचीन काल से ही स्त्री-पुरूष के संबंधो को लेकर सामाजिक धारणाएँ अलग-अलग रही हैं। सारे नियम और सिद्धांत पुरूषों ने अपने हित में बनाए। शील, चरित्र, नैतिकता आदि का सारा भार स्त्री पर डाल दिया गया। तरह-तरह के बंधनों में नारी को ऐसे जकड़ दिया गया कि वह युगों-युगों में आत्मोद्धार की बात ही न सोच सकीं। पुरूष नारी का शोषक बनकर रहा।

नागार्जुन का उपन्यास-लेखन भारत की आजादी के बाद आरंभ हुआ। प्रेमचन्द के बाद भारतीय ग्राम्य जीवन का आधार बनाकर रचना करने वालों में नागार्जुन का नाम सर्वप्रथम आता है। उनके उपन्यासों का परिवेश मिथिलांचल से संबंधित है। "मिथिला की माटी में एक अद्‌भुत गंध है, जिसकी पहचान नागार्जुन जैसे प्रबुद्ध लेखक ने की है। वहाँ की मिट्टी में एक ऐसी सोंधी

महक है, जिसे अन्य नहीं पहचान सके।''[१] नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित नारी परम्परावादी होने के बावजूद आधुनिक प्रवृत्तियों से ओतप्रोत हैं। समाजवादी चेतना और प्रगतिशीलता ही उनके नारी पात्रों की विशेषता है। नारी पात्रों में गौरी, विश्वेसरी, मधुरी, निर्मला और उगनी प्रमुख हैं।

नागार्जुन के उपन्यासों में निम्न वर्ग की स्त्रियाँ उच्चवर्ग की स्त्रियों की अपेक्षा अधिक प्रगतिशील है क्योंकि वह पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम करती हैं तथा आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर बनी रहती है। नागार्जुन का विचार है- ''देहांत में या शहर में मजदूर लोग अपनी औरतों को बहुत आजादी देते हैं। गृहस्थी की गाड़ी को मर्द और औरत बराबर खींचते हैं। वह हल चलाता है तो वह ढेला फोड़ती है। वह दीवार जोड़ता है तो वह ईंटें ढोती हैं। यही आत्मविश्वास लेखक उच्चवर्ग की नारियों में भी देखना चाहता है। जब तक महिलाएँ आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर नहीं बनेगी तबतक उन्हें वास्तविक रूप में स्वतंत्रता हासिल नहीं हो सकेगी।''[२]

नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में नारियों को महत्व दिया है क्योंकि जीवनरूपी गाड़ी के दो पहिए हैं, एक स्त्री और दूसरा पुरूष। उनका विचार है- ''मर्द और औरत एक-दूसरे के बिना रह ही नहीं सकते। एक की बोली दूसरे के लिए शहद है। एक की चितवन दूसरे के लिए बिजली है। उसकी गंध इसके लिए चंदन है। यह छू देगी तो उस ठूँठ से टूसे निकल आयेंगे।''[३]

'नई पौध' उपन्यास की बिसेसरी एक प्रगतिशील प्रधान चरित्र है। जब उसे पता चलता है कि उसके नाना एक वृद्ध अमीर के साथ उसकी शादी करवाना चाहते हैं, बेचैन तो होती है पर धैर्य से काम लेती है। गाँव के युवक इस समस्या का समाधान करते हैं। बिसेसरी जानती है कि केवल आँसू बहाते रहने से उसका भविष्य नहीं बदलेगा। वह साहसी थी और 'बमपाटी' की अनियमित सदस्या भी थी। बिसेसरी दरअसल गौरी नहीं बनना चाहती, क्योंकि वह अभी युवा है और भविष्य के बारे में अपना निर्णय स्वयं ले सकती है। वाचस्पति को बिसेसरी के साथ ब्याह करने के लिए तैयार किया जाता है। धैर्य, हिम्मत और साहस के बल पर बिसेसरी अपनी पसंद का जीवन-साथी प्राप्त करती है, अपना बिगड़नेवाला भविष्य बना लेती है। साथियों के सहयोग से और स्वयं के बारे में उचित निर्णय से बिसेसरी अपनी अनमोल जिंदगी को खतरे से बचा लेती है। नागार्जुन बिसेसरी को एक बहादुर लड़की के रूप में पेश करना चाहते हैं। वस्तुत: यह गौरी के व्यक्तित्व के विरूद्ध खड़ी हुई एक युवा लड़की है जो स्त्री के अपमान का बदला लेना चाहती है। उसमें आत्मविश्वास है और उसका व्यक्तित्व स्वतंत्र है। उसमें परिवार को विरोध करने की हिम्मत दिखाई पड़ती है। नई पीढ़ी की लड़कियों के लिए बिसेसरी एक मिसाल बन गई है। नागार्जुन नारी

---

१. नागार्जुन का गद्य साहित्य- डॉ॰ आशुतोष राय, पृ. 94
२. वही - पृ. 81
३. कुंभीपाक - नागार्जुन, पृ. 78

को अबला नहीं सबला के रूप में देखना चाहते हैं।

'वरूण के बेटे' उपन्यास की मधुरी भी बिसेसरी की तरह एक बहादुर लड़की है। वह इस उपन्यास में अपनी क्रांतिकारी भूमिका निभाती है। जमींदारों और सरकारी अधिकारी के षड्यन्त्र के विरूद्ध स्थापित मछुआ संघ की वह प्रमुख नारी सदस्या है। गढ़पोखर पर कब्जा करने के विरोध में वह पुलिस के हाथों गिरफ्तार हो जाती है। इस प्रकार की नारियों के द्वारा नागार्जुन नारी के व्यापक क्षेत्र में भागीदारी को चित्रित करना चाहते हैं और एक दिशा-निर्देश देने के इच्छुक हैं।

अच्छे गुण-रूप वाली मधुरी को उसके अनुरूप पति नहीं मिला। नशाखोर ससुर की खुराफातों ने उसे पति के पास टिकने नहीं दिया। अन्याय और अत्याचार सहकर गुलामी का जीवन जीना मधुरी के स्वभाव में नहीं था। वह खुद ससुराल छोड़कर चली जाती है। मधुरी अपने भविष्य के बारे में सोचती है। नागार्जुन नारी को पारिवारिक बंधनों से मुक्त कर समाज का दायित्व सौंपकर उसके व्यक्तित्व का विकास चाहते हैं। वस्तुत: वह नई पीढ़ी की लड़कियों को दृढ़ चरित्र वाली सक्रिय नारी के रूप में देखना चाहते हैं। वे नहीं चाहते कि स्त्री परंपरागत रूप से सामाजिक-सांस्कृतिक बंधनों में दासता की बेड़ियों से जकड़ी रहे। यही वजह है कि वे मधुरी और बिसेसरी जैसी नारी पात्रों का सृजन करते हैं। नागार्जुन के विचार में नारियों को पुरूषों के हाथों की कठपुतली बनकर नहीं रहना चाहिए। उसे मेषमाता नहीं सिंहनी बनना चाहिए। अधिकार प्राप्ति के लिए उसे मूक नहीं वाचाल बनना चाहिए।

अत: नारी के प्रति नागार्जुन का दृष्टिकोण संयत और स्वस्थ प्रतीत होता है और इन नारी पात्रों का विकास जीवन की यथार्थ भावभूमि पर हुआ है। इन नारी चरित्रों की एक विशेषता यह है कि उपन्यासों के अंत तक आते-आते रूढ़िवादी समाज में जन्मे और पले होने पर परंपरागत रूढ़ियों, कुरीतियों और अंधविश्वासों के प्रति विद्रोही हो उठती हैं। इन नारी पात्रों में गौरी ही एकमात्र ऐसी स्त्री है, जो परंपरागत सामाजिक नियम और मर्यादाओं को ढोते-ढोते आँसू बहाकर, गल-गलकर अपनी जिंदगी समाप्त कर देती है। लेकिन अन्य उपन्यासों की नारी पात्र प्राय: प्रतिकार और विरोध करती दिखाई पड़ती हैं।

नागार्जुन अपने नारी पात्रों को भाग्यवादी बनाना नहीं चाहते। अंध श्रद्धाओं और अंधविश्वासों के विरोध में ये संघर्ष करती दिखाई देती हैं। वे विद्रोह करती हुई स्वाभिमान का जीवन जीना चाहती हैं। अपने क्रांतिकारी विचारों को व्यवहार में लाने की हिम्मत दिखानेवाली इन स्त्रियों के साथ नागार्जुन की असीम करूणा दिखाई देती है।

3.2. नारी : व्यक्तित्व के विभिन्न पक्ष और नागार्जुन के उपन्यास

उपन्यासकार नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित नारी अपने व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों के साथ हमारे सामने उपस्थित होती हैं। उनके विभिन्न व्यक्तित्व में सचेतनता की अभिव्यक्ति पूर्णरूपेण परिलक्षित होता है।

3.2.1. नारी : माता, पत्नी, प्रेमिका, भगिनी, भाभी, पुत्री के रूप में

माता के रूप में

'रतिनाथ की चाची' उपन्यास में गौरी का स्वरूप एक माँ के रूप में परिलक्षित होता है, जो अपने परिवार को एक व्यवस्थित तरीके से सजाकर रखना चाहती है। रतिनाथ उसका भतीजा है पर वह उसे अपने पुत्र से भी ज्यादा प्यार करती है। अपने पुत्र उमानाथ के व्यवहार से क्षुब्ध होकर गौरी आत्महत्या की बात सोचती है परंतु एक माँ होने के नाते सोचती है-''गले में फंदा लगाकर मरूँगी तो बेचारा उमानाथ सुयश का ऐसा भारी पहाड़ कैसे संभाल सकेगा? ना, माँ को लेकर जितना यश उसे अब तक मिला है वही पर्याप्त है। फाँसी लगाकर गौरी स्वयं तो तू भवबंधन से छुटकारा पा लेगी लेकिन उस अभागे का क्या होगा?''[१]

गौरी रतिनाथ को अपने पुत्र से बढ़कर मानती है। वह सदैव रतिनाथ के विषय में चिंतित रहती है। उमानाथ द्वारा उपेक्षित होने पर उसका वात्सल्य रतिनाथ के प्रति और अधिक गहरा हो जाता है। वह रतिनाथ के हाथों ही अपना अंतिम संस्कार कराना चाहती है- ''हाँ, रतिनाथ ही अपने हाथ से मेरा अंतिम संस्कार करेगा। वह मेरा मानस पुत्र है.....चाची का चिंतन चक्र चलने लगा.....रति ने कुछ ही दिन पहले कहा था- चाची, पता नहीं माँ कैसी हुआ करती है! मगर मेरे लिए तो तुम्ही माँ हो। हो न चाची।''[२]

गौरी माँ एक समृद्ध परिवार की स्त्री है, वह समाज के लिए बाघिन है, पर जब गौरी विधवा होने के बावजूद जयनाथ से गर्भवती हो जाती है, तब वह अपने माँ के पास चली जाती है। उसे पता है कि इस प्रकार की घटना तरकुलवा के लिए नई नहीं है। इसलिए समाज की परवाह किए बिना वह अपने आप बुदबुदाने लगती है - ''कोई क्या कर लेगा हमारा? बिटिया को मैं प्याज की तरह जमीन के अंदर दबाकर नहीं रख सकती, इसके चलते जो कुछ हो। माँ हूँ, तभी तो आई है। नहीं तो मुजफ्फरपुर, पटना न भाग जाती?''[३]

'बलचनमा' उपन्यास में बलचनमा की माँ खुद परेशानियाँ सहकर अपने बच्चों को सुखी देखना चाहती है। छोटे मालिक अठन्नी का लोभ देकर रेबनी को अपने जाल में फँसाना चाहते हैं, लेकिन वह वहाँ से भागकर माँ के पास चली जाती है। छोटे मालिक रेबनी के माँ को पीटते हैं और रेबनी को उनके हवाले करने का दबाव डालते हैं पर वह मार खाकर भी अपनी बेटी के इज्जत की सौदा नहीं करती है। वह बलचनमा से कहती है - ''बबुवा, बालचन! मर जाना लाख गुना अच्छा

---

१. रतिनाथ की चाची : नागार्जुन, पृ. 134
२. वही, पृ. 135
३. वही, पृ. 28

है मगर इज्जत का सौदा करना अच्छा नहीं। अपनी माँ के मुँह से ऐसी भारी बात सुनकर बलचनमा की छाती बासों उछलने लगी। बहुत बड़े भागवंत को ही ऐसी माँ मिलती है। उसने भी यह ठान लिया कि चाहे उजड़ जाना पड़े, चाहे जहल-दामुल हो, चाहे फाँसी चढ़ूँ मगर कभी जालिम के सामने सिर नहीं झुकाऊँगा।''[१] इसप्रकार बलचनमा की माँ के पास एक माता का हृदय तो है ही, साथ ही वह क्रांतिकारी विचारवाली भी है।

राधाबाबू की पत्नी लवंगलता मलिकाइन होने के बावजूद बलचनमा के साथ मलिकाना जुर्म नहीं करती। वह बलचनमा को अपने बेटे की तरह मानती है और उसके खाने-पीने का भी ख्याल रखती है। बलचनमा कहता है- ''खुशी इसलिए नहीं हुई कि दही मिला। खुशी की वजह थी मलिकाइन को मेरा ख्याल था।''[२]

'नई पौध' उपन्यास में रामेसरी को अपनी पुत्री बिसेसरी के सौन्दर्य पर अभिमान है पर अपने बाप के राक्षसी लोभ पर उसके मन में घृणा भी है। जब उसे पता चलता है कि बिसेसरी एक बूढ़े के गले मढ़ी जाने वाली है, तब रामेसरी एक माँ होने के नाते अपनी पुत्री की हित चिंता करती है। वह बिसेसरी को कनेर की गुठली घिसकर पिला देना चाहती है, लेकिन दूसरे ही क्षण वह पुत्री को देखकर वात्सल्य से भर जाती है और सोती हुई बिसेसरी को खींचकर अपनी छाती से सटा लेती है। वह सोचती है - ''लड़की के जीवन को धूल में मिलाने का उसे क्या अधिकार है ?.....दूल्हे को आने दो, उस बूढ़े के माथे पर अंगारे न डाल दूँ तो रामेसरी मेरा नाम नहीं। एक बूढ़ा मेरी लड़की का सींथ भरेगा, मुँह झुल्सा दूँगी मरदुए का।''[३]

अनमेल विवाह की भयंकर परिणामों की कल्पना करते ही उसके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। वह बार-बार बिसेसरी को अपनी छाती से सटा लेती है। वह जान बुझकर अपनी बेटी को खाई में धकेलना नहीं चाहती है। वह सोचती है- ''धन-सम्पदा ही क्या सबसे बड़ी चीज है ? पन्द्रह साल की कच्ची छोकरी पचास साल के पकठोस दुल्हा के साथ किस तरह अपनी जिंदगी काटेगी ?''[४]

नागार्जुन के उपन्यासों में माँ के रूप में चित्रित नारी प्रगतिशील दिखाई पड़ती है, जो अपने परिवार को सुचारू रूप से सही सलामत देखने की इच्छुक हैं उनमे किसी प्रकार की स्वार्थ की भावना नहीं है।

पत्नी के रूप में

'नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में नारी को पत्नी के रूप में चित्रित किया है जो अपने अधिकार को प्राप्त करने के लिए पति के विरूद्ध आवाज भी उठाती है। वह पुरूष की दासी मात्र

---

१. बलचनमा - नागार्जुन, पृ. 69
२. वही, पृ. 110
३. नई पौध - नागार्जुन, पृ. 10-11
४. वही, पृ. 30

बनकर अब नहीं रहना चाहती। भोग-विलास की वस्तु बनकर रहना उसे मंजूर नहीं। 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास में चित्रित नारी का व्यक्तित्व पत्नी के रूप में देखा जा सकता है।

मोतीहारी शहर से डेढ़ मील उत्तर एक दूबे का मौजा था। वे अपने बेटे नरेश को संस्कृत विद्यालय में पढ़ा रहे थे। अपने पिता के कठोर अनुशासन में वह ब्रह्मचारी का जीवन बिता रहा था। न तो सिर में वह तेल डाल सकता न आइने में मुँह देख पाता और न कंघी का इस्तेमाल कर सकता। जमींदार साहब ने उसके लिए जूता तक वर्जित कर रखा था। लेकिन ''नरेश की माँ को अपने पति का यह पागलपन कतई पसंद न था। वह बीच-बीच में लड़के के सिर में सुवासित तेल डाल देती, शायद नारियल का। खद्दर की मोटी धोती और मोटा कुर्ता उतरवाकर मिल की महीन धोती और नफीस कमीज पहना देती। x x x दूबे जी जब से वैष्णव हुए थे तब से परिवार भर को निरामिषाहारी बनाने का सत्याग्रह कई बार कर चुके थे। दो-चार दिन के लिए जब वह बाहर जाते तभी उनके यहाँ मछलियाँ पकतीं और नरेश की माँ का जी भरता।''[१]

'गरीबदास' उपन्यास की नारी माया अपने पति कपिल के इस विचार-संस्था को पालिटिक्स की धूल से हर हालत में बचाए रखना है- का विरोध करती हुई अध्यापकों और छात्रों के छुट्टी की आवेदन पत्रों के विषय में स्पष्ट करने को कहती है- ''क्या तुम अपनी इस मानस पुत्री, इस शिक्षण संस्था को सचमुच ही राजनीति से बचाकर रख पाए हो ?आज तुम हमें अच्छी तरह खुलासा करके समझाओ कि इन आवेदन-पत्रों का क्या मतलब है ? कागज की इन टुकड़ियों को गलाकर वह कौन-सा अचार तुम नई पीढ़ी के लिए तैयार करने जा रहे हो.....।''[२]

'बलचनमा' उपन्यास के राधा बाबू की पत्नी लवंगलता को अपने भाई की तरह अमीरी पंसद थी। ''राधा बाबू की फकीरी उन्हें पसंद नहीं थी। आश्रम का जीवन भी उन्हें पसंद नहीं था। मगर कई साल दोनों एक-दूसरे से अलग रहे थे। अब कुछ दिनों तक साथ रहने का मन हुआ।''[३] आश्रम का जीवन पसंद न होने पर भी पत्नी का राधा बाबू के साथ परिवार सहित आश्रम आकर रहना इस बात का सूचक है कि वह अपने अधिकार के प्रति सचेत है और पति के साथ रहकर ही अपनी गुजारा करना चाहती है। आश्रम में चाय पीने की मनाही होने के बावजूद वह मानती नहीं थी, ''पूस की सुबह-शाम को जब ठंडी हवा चलती थी या बच्चों को सर्दी-जुकाम हो जाता था तो वह चाय जरूर बनाती। उनको पान का भी बड़ा शौक था।''[४]

आश्रम में रहकर राधा बाबू की पत्नी बहुत समझाए जाने पर खद्दर पहनने को राजी हुई। लेकिन एक दिन वह बच्चों के लिए लड़ पड़ी- ''इनकों मैं किसी भी हालत में मोटिया कपड़ा नहीं पहनने दूँगी। बड़े होकर चाहे जो पहने-ओढ़े, अभी से क्यों जुलाहों का बाना धरेंगे ?''[५] राधा बाबू

---

१. रतिनाथ की चाची : नागार्जुन, पृ. 110-111
२. गरीबदास : नागार्जुन, पृ. 51
३. बलचनमा : नागार्जुन, पृ. 111-112
४. वही, पृ. 113
५. वही, पृ. 116

की अपनी पत्नी के सामने एक न चलता था- "राधा बाबू अपनी घरवाली की टेढ़ी भौहों से बुरी तरह घबराते थे। बाबू का बाहर तो खूब चलता था, घर में नहीं चल पाता था। यहाँ मलिकाइन ही दहला होती थीं, मालिक हमेशा नहला रहे थे।"[१]

उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि नारी अपने पतियों के इशारों पर नहीं चलना चाहती। वे अपनी तथा बाल-बच्चों की भलाई की बात खुद सोच सकती है और खुद फैसला भी कर सकती है। यह उनके समाज सचेतनता का ही परिचायक है।

प्रेमिका के रूप में

नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में नारी व्यक्तित्व के विभिन्न पक्ष के अंतर्गत नारी को प्रेमिका के रूप में भी चित्रित किया है। इन नारियों की भूमिका स्वस्थ प्रेम को उजागर करना है। इसमें कहीं कोई बाँकपन या छल-छिद्र नहीं है। वह अपने प्रेमी के साथ वफादार होती हैं।

'वरूण के बेटे' उपन्यास की मधुरी खुरखुन तीयर की बेटी है। भोला साहनी का बेटा मंगल मधुरी से प्रेम करता है, मधुरी भी मंगल से प्रेम करती है। परिस्थितिवश मंगल का ब्याह एक अन्य सुशील लड़की से होता है और मधुरी का ब्याह एक बौड़म से। विवाह के बाद मधुरी और मंगल मिलते रहते हैं। ऐसी ही आखिरी मुलाकात में मधुरी मंगल से कहती है,"देखो मंगल, अब हम छोकरा-छोकरी नहीं रहे। धूल मिट्टी के बचकाने खेल काफी खेल चुके। सयाने समझकर माँ-बाप और सास-ससुर ने तुम पर जो जिम्मेदारी सौंपी है, उससे जी चुराना कायरता होगी। तुम्हें अपनी घरवाली के प्रति वफादार होना है, मुझे अपने घरवाले के प्रति"[२] मधुरी के इस कथन में विवेक, संयम और जीवन के यथार्थ का एहसास मिलता है। वह मंगल को सही राह दिखाने की कोशिश करती है। अतः वह एक सचेतन नारी के रूप में परिलक्षित होती है। वह मंगल से कहती है- "मैं तुम्हारा घर बर्बाद नहीं करना चाहती मंगल, मैं नहीं चाहती कि एक औरत की सिन्दूरी माँग पर कालिख पोतती रहूँ।"[३]

'उग्रतारा' उपन्यास की उगनी बाल-विधवा थी। सुंदरपुर मढ़िया का कामेश्वर नामक एक विधुर युवक उससे प्रेम करता है। कामेश्वर के साथ भाग जाने के प्रयास में वह पकड़ी जाती है और उसे जेल हो जाती है। वह अपने हिम्मत और धैर्य के साथ जीवन जीती है। भभीखन सिंह से पीछा छुड़ाकर कामेश्वर से वह प्रेम-विवाह करती है। वह परिवर्तन में विश्वास रखती है और आशावादी है। भभीखन सिंह को वह पत्र लिखती है- "मैंने अपना सब कुछ जिसे सौंप दिया था,

---

१. बलचनमा - नागार्जुन, पृ. 116
२. वरूण के बेटे - नागार्जुन, पृ. 52
३. वही, पृ. 52

उसी के साथ गाँव से निकली थी। जिसके साथ गाँव से निकली थी वही मुझे आपके क्वार्टर से निकाल लाया है। उस आदमी का दिल बहुत बड़ा है। पराए गर्भ को ढोनेवाली अपनी प्रेमिका को फिर से, बिना किसी हिचक के, उसने स्वीकार कर लिया है। उसने मुझसे शादी कर ली है।''[१]

'अभिनन्दन' उपन्यास की नरपतनारायण सिंह की बेटी मृदुला पिता की उपेक्षा के कारण एक दिन अपने प्रेमी के साथ घर से निकल भागती है। वह बाप के नाम एक पत्र लिखकर छोड़ जाती है- ''इन्टर का एक मेरा साथी बम्बई में रहता है। हम बीच बीच में मिलते रहे हैं। एक मिल में वह टेक्निकल एक्सपर्ट है, छः सौ पाता है.....वह आया हुआ है, मैं उसी के साथ जा रही हूँ। विजय दशमी के शुभ अवसर पर हमारी शादी होगी।''[२]

प्रेमिका के रूप में चित्रित नारी के द्वारा नागार्जुन उन्हें सामाजिक मान्यताओं और रूढ़ियों के प्रति विरोधी एवं सचेत दिखाना चाहते हैं। वे नहीं चाहते कि नारी घुट-घुटकर जीवन बिताए।

भगिनी के रूप में

नागार्जुन में अपने उपन्यासों में नारी को भगिनी के रूप में भी पेश किया है। कम्पाउण्डर की बीबी भुवनेसरी को 'कुंभीपाक' से मुक्ति दिलाने का काम करती है। वह भुवन के प्रति सगी बहन का व्यवहार करती है। वह भुवन को आश्वासन देती है कि- 'ठीक है कि मैं तेरे लिए ज्यादा कुछ नहीं कर सकती, मामूली हैसियत है हमारी। लेकिन तुझे मैं सगी बहन का प्यार जरूर दे सकूँगी।' इतना सुनकर भुवन की आँखों से आँसू बहने लगे। भुवन के आँसू पोंछती हुई निर्मला कहने लगी- ''पगली कहीं की, इस तरह रोया नहीं करते। कभी कुछ बताया भी तो नहीं तूने। चाहे कैसी भी है, मेरी बहन है तू....।''[३]

भाभी के रूप में

नागार्जुन के उपन्यास में नारी का चित्रण भाभी के रूप में भी मिलता है। 'उग्रतारा' उपन्यास में अपनी भाभी द्वारा प्रेरणा प्राप्त करके कामेश्वर भभीखन सिंह द्वारा गर्भिणी अपनी प्रेमिका उगनी को पुनः अपनाकर समाज के सम्मुख एक आदर्श प्रस्तुत करता है। भाभी की प्रेरणा पाकर ही कामेश्वर प्राचीन परम्पराओं को एक ही झटके में उड़ा देता है। भाभी कामेश्वर और उगनी की विवाह का पूरा बन्दोबस्त करके और सिन्दूर भरी कटोरी सामने रखकर बोली- ''आज

---

१. उग्रतारा - नागार्जुन, पृ. 115
२. अभिनन्दन - नागार्जुन, पृ. 132
३. कुंभीपाक - नागार्जुन, पृ. 90

वह विधि पूरी होगी। मैं पुरोहित हूँ। लो, चुटकी में सिन्दूर लो और उग्रतारा की सींथ भर दो बाबू! उठो.....।''[१]

पुत्री के रूप में

'अभिनन्दन' उपन्यास में बाबू नरपतनारायण सिंह की पुत्री मृदुला अपने पिता से असंतुष्ट है। शादी के छः महीने बाद ही मृदुला के पति की हवाई दुर्घटना में मृत्यु हो गई थी। पिता उसके पुनःविवाह की बात भी नहीं सोचते। मृदुला अपना रास्ता खुद चुन लेती है और पिता के अभिनन्दन वाले दिन ही अपने प्रेमी के साथ घर से निकल भागती है। वह पत्र के माध्यम से अपने पिता से प्रश्न करती है जो उसके सचेत होने का परिचायक है- ''मेरी तरफ क्या कभी अपने ध्यान दिया? क्वार की अगली पूनम को मैं छब्बीस वर्ष की हो जाऊँगी।''[२] नागार्जुन ने पुत्री के रूप में चित्रित नारियों के द्वारा पिता से अपने अधिकारों की माँग करते हुए दिखाकर उन्हें सचेत होता हुआ प्रस्तुत करते हैं।

3.2.2. नारी : परम्परागत एवं आधुनिक प्रवृत्तियों का अद्‌भुत समन्वय

लोकजीवन के सहज चित्रण की दृष्टि से नागार्जुन के उपन्यास सम्पूर्ण कथा-साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। मिथिला के प्रति उनका विशेष लगाव है। वहाँ के जनजीवन की झाँकी को सही अर्थों में चित्रित करने का सबसे बड़ा श्रेय नागार्जुन को मिला है। नागार्जुन ने अपने सामाजिक परिवेश में स्त्रियों की जो दुर्दशा देखी, उसका मार्मिक चित्रण अपने उपन्यासों में किया है। 'रतिनाथ की चाची' में वात्सल्यमयी नारी, 'जमनिया के बाबा' में साधुओं के कुचक्र में फंसी नारी की करूण दशा, 'नई पौध' में अनमेल विवाह, 'कुंभीपाक' में वेश्या समस्या, 'उग्रतारा' में व्यभिचार, बलात्कार से पीड़ित नारियों का अंकन किया गया है।

नागार्जुन अपने उपन्यास के कथानक ग्रामांचल से चुनते हैं और उनके पात्र ग्राम के होते हैं। उनके नारी पात्र भी ग्रामीण हैं, कुछ पढ़ी-लिखी और कुछ निरक्षर हैं। नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में इन पारम्परिक विचारवाली नारियों के अंदर आधुनिक प्रवृत्तियों की बीज बोया है क्योंकि ''आधुनिक काल के साहित्य में नारी ने अपने व्यक्तित्व के बंधन ढीले कर दिये। वह पुरूष की दासी मात्र बनकर अब नहीं रहना चाहती। भोग-विलास की वस्तु बनकर रहना उसे

---

१. उग्रतारा - नागार्जुन, पृ. 90
२. अभिनन्दन - नागार्जुन, पृ. 132

मंजूर नहीं।''[१] इतना ही नहीं वह अपने हक के लिए खुद लड़ती है और उसे प्राप्त करना चाहती है। अन्याय के विरूद्ध भी वह सचेत होती है।

'रतिनाथ की चाची' उपन्यास की गौरी अनमेल विवाह होने के कारण विधवा हुई। जयकिशोर चाहता था कि विधवा बहन गौरी हमेशा के लिए तरकुलवा ही रह जाय, मगर गौरी स्वाभिमानी होने के कारण यह प्रस्ताव मंजूर नहीं करती है। माँ के बार-बार आग्रह करने पर उसने कहा था- ''विवाहिता के लिए पितृकुल का अमृत भी पतिकुल के माँड़ या पीने के साधारण जल की तुलना में तुच्छ है।''[२] गौरी का यह विचार परम्परागत है। लेकिन इतना कुछ होने के बावजूद वह आधुनिक विचारों से ओत-प्रोत है। वह जयनाथ की दूसरी शादी करवाने के पक्ष में है ताकि शादी के बाद जयनाथ की लोलुप दृष्टि से वह बच सके। इतना ही नहीं वह किसान कुटी बनाने के लिए सहायता के रूप में गौरी ने अपना दो साल का पुराना कम्बल दे दिया। रतिनाथ के मना करने पर उसने जवाब दिया- ''यह दस का काम है। देश का काम है। गरीबों का यज्ञ है। मेरे पास और है ही क्या, जो दूँगी।''[३] गौरी का यह विचार उसके आधुनिक प्रवृत्तियों का ही परिचायक है जो परम्परागत विचारों के साथ मिश्रित है।

गौरी की माँ आधुनिक विचारवाली नारी है। गौरी के गर्भ गिराए जाने के ग्यारह दिन बाद उसने सत्यनारायण भगवान की पूजा करवायी। कुछ लोगों का विचार था कि सिमरिया घाट जाकर प्रायश्चित कर लेने के उपरान्त ही सत्यनारायण की पूजा करवानी चाहिए थी। उनके लिए गौरी की माँ का जवाब था-''बूँद भर गंगा जल में उतनी ही सामर्थ्य है, जितनी कि सिमरिया घाट की गंगा में। यूँ कोई कहे तो हमारी बेटी पचीस बार गंगा नहाने को तैयार है। गौ-हत्या, ब्रह्म-हत्या का पाप तो इसने किया नहीं, फिर महज मामूली बीमारी के लिए किसी को इतना बड़ा दंड मैं कैसे दिलवाती?''[४]

'दुखमोचन' उपन्यास में माया की माँ प्राचीन संस्कारों में पली हुई है। लेकिन उसके विचार आधुनिक प्रवृत्तियों से भरे हुए हैं। विधुर कपिल और विधवा माया दोनों एक दूसरे के सम्पर्क में आते हैं और दोनों विवाह करने की सोचते हैं। अंततः कपिल और माया पुनर्विवाह-अंतर्जातीय विवाह के लिए तैयार हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में ग्रामीण समाज के प्रगतिशील और प्रतिक्रियावादी-रूढ़िवादी लोगों के विचार अलग-अलग होते हैं। पुरानी-पीढ़ी के दकियानूसी-रूढ़िवादी उच्च जाति के कुलीन ब्राह्मण इस विवाह को घोर कलियुग का प्रभाव मानते हुए अनर्थ बताते हैं और बाकी अन्य जाति के लोग इसे उचित मानते हैं। लेकिन प्राचीन संस्कारों में पली हुई माया की माँ इस विवाह को कबूल करती है। लेखक के अनुसार-''प्राचीन संस्कारों में पली हुई

---

१. नागार्जुन का उपन्यास साहित्य : समसामयिक सन्दर्भ - डॉ. सुरेन्द्र कुमार यादव, पृ. 157
२. रतिनाथ की चाची - नागार्जुन, पृ. 26
३. वही, पृ. 85
४. वही, पृ. 54

माँ एक ओर थी, दूसरी ओर थी लड़की के जीवन को सुखमय देखने की लालसा में असवर्ण विवाह तथा पुनर्विवाह का प्रस्ताव कबूल करनेवाली माँ.....एक ही बुढ़िया के अंदर दो माताएँ थी। दोनों में डटकर संघर्ष हुआ था और आखिर में यह दूसरी माँ ही जीत गई थी।''[१] अत: माया की माँ का व्यक्तित्व आधुनिक प्रवृत्तियों से ओत-प्रोत है, जो एक प्रगतिशील दृष्टिकोण का परिचायक है।

'नई पौध' उपन्यास में बिसेसरी की माँ रामेसरी परम्परागत होने के बावजूद आधुनिक प्रवृत्तियों से परे नहीं है। वह अपने पिता खोखा पंडित के स्वभाव से भली-भाँति परिचित है, जो धन बनाने की लालच में अपनी बेटियों को अधेड़ों और बूढ़ों के मत्थे मढ़कर काफी रकम कमा चुके हैं। अब वे अपनी नतिनी के लिए नौ सौ रूपएँ में एक अधेड़ को खरीदकर ला रहे हैं जो पाँचवी बार दूल्हा बनने जा रहा है। वह धनी है लेकिन रामेसरी धन की लोभ में अपनी बेटी की बलि देना नहीं चाहती है उसका विचार है- ''धन-सम्पदा ही क्या सबसे बड़ी चीज है ? पन्द्रह साल की कच्ची छोकरी पचास साल के पकठोस दूल्हा के साथ किस तरह अपनी जिनगी काटेगी ?''[२]

विसेसरी के नाना खोखा पंडित नहीं चाहते थे कि बिसेसरी पढ़े-लिखे, लेकिन रामेसरी के प्रयास से ही वह अपर प्राइमरी तक पढ़ सकी- ''अपर प्राइमरी तक पढ़ने का भी यह सुयोग जो उसे मिल सका सो अपनी माँ के बदौलत। नाना की कतई यह राय नहीं थी बिसेसरी पढ़े-लिखे। वह तो रामेसरी के लगातार आग्रह का ही यह फल था कि खोखा पंडित अपनी नतनी का स्कूल जाना बर्दाश्त कर सके।''[३]

'बलचनमा' उपन्यास में बलचनमा की माँ रूढ़िवादी होने पर भी क्रांतिकारी विचारों से उद्वेलित हो जाती है। बलचनमा द्वारा जमींदार और मालिक के शोषण तथा अत्याचार के विरूद्ध आवाज उठाने पर उसकी माँ कहती है- 'जिन लोगों का जूठन खाकर तू बड़ा हुआ है उन्हीं के बारे में ऐसी-ऐसी बात सोचता है ? अधरम होगा रे बलचनमा! भगवान नाराज हो जायेंगे।' लेकिन वही माँ जब छोटे मालिक द्वारा रेबनी पर अत्याचार करना देखती है तो अपनी क्रांतिकारी विचार बलचनमा के समक्ष व्यक्त करती है-''बबुआ बालचन! मर जाना लाख गुना अच्छा है मगर इज्जत का सौदा करना अच्छा नहीं।''[४]

'उग्रतारा' उपन्यास में कामेश्वर की भाभी नयी चेतना की प्रतीक है। उसकी प्रेरणा से ही कामेश्वर दूसरे (भभीखन सिंह) के द्वारा गर्भिणी अपनी प्रेमिका को पुन: अपनाकर एक आदर्श प्रस्तुत करता है। कामेश्वर की भाभी उन दोनों को प्रोत्साहित करती है और उनकी शादी करवाती

---

१. दुखमोचन - नागार्जुन, पृ. 81-82
२. नई पौध - नागार्जुन, पृ. 30
३. वही - पृ. 28
४. बलचनमा - नागार्जुन, पृ. 69

है। वह सिन्दूर की कटोरी सामने रखकर कहती है- ''आज यह विधि पूरी होगी। मैं पुरोहित हूँ। लो, चुटकी में सिन्दूर लो और उग्रतारा की सींथ भर दो बाबू।''[१]

अत: नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित नारी प्रगतिशील विचार वाली हैं। ग्राम में रहने और कम पढ़ी-लिखी होने के बावजूद आधुनिक विचारों से लैश हैं। नागार्जुन ने नारी के अंदर परम्परागत एवं आधुनिक प्रवृत्तियों का सुन्दर समन्वय किया है, जो उपन्यास को सशक्त बनाने में सहायक हैं।

3.2.3. नारी : अन्याय-शोषण के प्रति विद्रोही तेवर

नागार्जुन विचारों से मार्क्सवादी माने जाते रहे हैं किन्तु उनकी वैचारिकता यत्र-तत्र मार्क्सवाद को छोड़कर आगे बढ़ती है। पीड़ितों और शोषितों के प्रति संवेदना उनकी विचारधारा का उद्‌गम है। वे निम्न वर्ग कहे जानेवालों के शोषण से क्षुब्ध और आक्रोश युक्त हैं। ''नागार्जुन के पात्र स्वावलम्बी जीवन के पुरस्कर्ता हैं। नागार्जुन किसी समस्या के समाधान हेतु किसी तीसरी शक्ति में विश्वास नहीं करते, बल्कि जो लोग समस्याग्रस्त हैं, उनके समूह और संगठन के द्वारा समाधान हेतु संघर्ष करने की प्रेरणा देते हैं।''[२] प्रो॰ गोपाल राय नारी के अधिकारों के विषय में लिखते हैं- ''आजादी मिलने और विशेषकर भारतीय संविधान लागू होने के बाद भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति में जबरदस्त बदलाव आ गया। धीरे-धीरे न केवल नारी के प्रति पुरूष वर्ग की मानसिकता में बदलाव आया बल्कि नारी भी अपने अधिकारों के प्रति अधिकाधिक सजग होने लगी।''[३]

नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित नारी चरित्रों के दो वर्ग बनाये जा सकते हैं। एक तरफ परम्परागत सामाजिक-सांस्कृतिक रूढ़ियों में पिसती शोषित नारी हैं, तो दूसरी तरफ इस प्रकार के परिवेश का विरोध करनेवाली नारियाँ हैं। वह पुरूष की दासी मात्र बनकर अब नहीं रहना चाहती। भोग विलास की वस्तु बनकर रहना उसे मंजूर नहीं। वह अपनी भलाई की बातें स्वयं सोचती है तथा अन्याय, शोषण के विरूद्ध आवाज भी उठाती हैं। नागार्जुन नारी पात्रों के द्वारा समस्त नारी समाज के उन्नयन और नवीन प्रगतिशील चेतना को उभारने का पूरा प्रयास करते हैं।

'रतिनाथ की चाची' उपन्यास की नायिका गौरी विधवा होने के बावजूद देवर जयनाथ के हवस की शिकार बनकर जब गर्भवती हो जाती है तब जयनाथ उसे मैके छोड़ आता है। शुभंकरपुर की स्त्रियों को इस बात की खबर मिल जाती है। दूर के रिश्ते की दो भाभियाँ गौरी पर छींटाकशी

---

१. उग्रतारा - नागार्जुन, पृ. 90
२. नागार्जुन का गद्य साहित्य - डॉ॰ आशुतोष राय, पृ. 163
३. हिन्दी उपन्यास का इतिहास - प्रो॰ गोपाल राय, पृ. 419

करती हैं। वह बिना कुछ बोले मन ही मन अपनी स्त्री जाति पर क्रोध जताती है। "ओ अभागी औरतों! मुझे क्या हो गया है, यह तुम भली-भाँति जानती हो। तुम्हें रत्ती-रत्ती पता है कि इस तरह का चेहरा एक स्त्री का कब होता है। फिर क्यों मेरा दिमाग चाटने आई हो? तुम्हें जिसका खटका है, उसी दुर्भाग्य की मैं शिकार हूँ। मेरी नियति के साथ क्यों माखौल करने आई हो?"[१]

गौरी अपनी स्त्री जाति पर क्रोध तो जताती ही है साथ ही पुरूषों की लालची वृत्ति पर भी आक्रोश व्यक्त करती है। जयनाथ चार सौ रूपए की लालच में रतिनाथ की ब्याह बाड़हड़वा में कराने का निश्चय कर चुका था। जब चाची को यह पता चला तो वह जयनाथ को फटकारती हुई बोली- "तुम भी धन्य हो, महाजन बनने की धुन में यही सब सोचा करते हो? इस तरह मैं तुम्हें रत्ती का गला नहीं काटने दूंगी। तुम्हारा वह खिलौना मात्र है, परंतु मेरा? मेरा वह कलेजा है। उसके साथ खिलवाड़ मत करो।"[२] गौरी परम्परावादी होने पर भी अन्याय के प्रति मूक नहीं दिखाई पड़ती, वह उसका विरोध जरूर करती है।

'बलचनमा' उपन्यास में बलचनमा की बहन रेबनी के साथ जब छोटे मालिक ने अठन्नी का लोभ दिखाकर बलात्कार करना चाहा, तब वह तुरंत अपने माँ के पास भाग गई। लेकिन जब मालिक ने उसकी माँ को किरासन तेल लाने के लिए दूकान भेजकर रेबनी का बलात्कार करना चाहा तब रेबनी ने उसका विरोध किया। सिर्फ विरोध ही नहीं- "उसने मालिक की कलाई पर इतने जोर से दाँत गड़ा दिये कि ससुर अचेत हो गये और रेबनी बिजली की फुर्ती से उठकर भाग आई।"[३] बलचनमा की माँ रेबनी के प्रति हुए बर्ताव से मालिक के प्रति आक्रोश व्यक्त करती हुई बलचनमा से कहती है- 'बबुआ बलचन! मर जाना लाख गुना अच्छा है मगर इज्जत का सौदा करना अच्छा नहीं।'

'कुंभीपाक' उपन्यास में परिस्थिति और परिवेश का शिकार बनकर पुरूष जाति द्वारा शोषित और नारकीय जीवन जीनेवाली चम्पा और इंदिरा की कहानी प्रस्तुत की गई है। इन दोनों स्त्रियों को नरक से बाहर निकालकर मुक्ति दिलाने का काम निर्मला करती है। कम्पाउण्डर की बीवी निर्मला, इंदिरा (भुवनेश्वरी) को बाथरूम से ही खींचकर ले जाती है और उसे छिपाकर अपने मौसेरे भाई सदानंद के यहाँ छोड़ आती है। वह भुवन को अपनी बहन मानती है और नारकीय जीवन जीने के लिए मजबूर करनेवाले पुरूष समाज पर आक्रोश व्यक्त करती हुई कहती है- "अब तुझे कोई बेच नहीं सकता, न खरीद ही सकता है कोई। तुझ पर तो अब मेरा ही हक है। मैंने तुझे अपना दिल देकर खरीद लिया है। देखूँ, कौन मेरी बहन का गला काटता है।"[४]

'जमनिया का बाबा' उपन्यास की अवधूतिन इमरितिया मठ के साधुओं की कुचक्र में

---

१. रतिनाथ की चाची - नागार्जुन, पृ. 36
२. वही, पृ. 95
३. बलचनमा - नागार्जुन, पृ. 68
४. कंभीपाक - नागार्जुन, पृ. 49

फँसी हुई है। वह चाहकर भी बाहर नहीं निकल पाती है। लेकिन इतना कुछ होने पर भी वह बाबा की करतूतों के प्रति अपने मन में आक्रोश व्यक्त करती है। क्वार महीने के महाअष्टमी की रात को बाबा ने लोगों पर अपना प्रभाव जमाने के लिए लक्ष्मी के छः महीने के बच्चे की बलि देने का जो स्वांग रचा उस घटना की याद आते ही वह सोचती है चंडी माता क्या सचमुच एक बच्चे के रक्त की प्यासी थी ? उसका मन जो जवाब देता है उसमें इस अन्याय के प्रति उसका विद्रोह ही स्पष्टतः परिलक्षित होता है- ''यह सब इस बाबा के दिमाग की खामखयाली थी। भोले-भोले लोगों पर अपना आतंक जमाने के लिए एक आदमी क्या इतना घिनौना काम करेगा ?''[१]

'वरूण के बेटे' उपन्यास में क्रांतिकारी भूमिका निभानेवाली मछुआ खुरखुन तीयर की बेटी मधुरी एक बहादूर लड़की है। अच्छे गुण-रूपवाली मधुरी को उसके अनुरूप पति नहीं मिला। नशाखोर ससुर की खुराफातों ने उसे पति के पास टिकने नहीं दिया। अन्याय, अत्याचार सहते हुए गुलामी का जीवन जीना मधुरी के स्वभाव में नहीं था। साधारण नारियाँ 'परित्यक्ता' का जीवन जीने को विवश होती है, पर मधुरी खुद ससुराल छोड़कर भाग जाती है। अपने जीवन की बागडोर वह अपने हाथ में लेती है। वह ससुर के अत्याचार और शोषण के प्रति विद्रोह करती हुई सोचती है- ''नहीं, अब वह कभी उस नशाखोर बूढ़े की लात-बात बर्दाश्त करने नहीं जाएगी....फिर से शादी कर लेगी दिलेर-नेकचलन और मेहनतकश जवान से.....और बगैर मर्द के कोई औरत अकेली जिन्दगी नहीं गुजार सकती है क्या ?''[२]

'नई पौध' उपन्यास की बिसेसरी एक बहादूर लड़की है। उसे यह अच्छी तरह मालूम था कि उसके नाना आज रात एक कसाई को ला रहे हैं, धूमधाम से अपनी नतनी का जिबह करायेंगे। वह यह भी जानती थी कि केवल आँसू बहाते रहने से उसका भविष्य नहीं बदलेगा। इसलिए 'तन-मन की समूची ताकत बटोरकर उसने पैरों को लड़खड़ाने से बचा लिया।' वह साहसी और गाँव के युवकमण्डल (बमपाटी) की अनियमित सदस्या थी। युवक उसे इस मुसीबत से उबारने का प्रयास करते हैं और वाचस्पति से बिसेसरी की शादी करवाते हैं। धैर्य, हिम्मत और साहस के बल पर बिसेसरी अपने पसन्द की जीवन-साथी प्राप्त करती है, अपना बिगड़ने वाला भविष्य बना लेती है। बिसेसरी की माँ रामेसरी को भी जब पता चला कि उसके पिता बिसेसरी के लिए नौ सौ रूपए में एक बूढ़ा को खरीद लाए है जो काफी धनी है, वह उसका विरोध करती हुई कहती है- ''धन-सम्पदा ही क्या सबसे बड़ी चीज है ? पन्द्रह साल की कच्ची छोकरी पचास साल के पकठोस दूल्हा के साथ किस तरह जिनगी काटेगी ?''[३]

'अभिनन्दन' उपन्यास में नृत्य-नाट्य केन्द्र की नाच सिखानेवाली लड़की जिसके साथ

---

१. जमनिया का बाबा - नागार्जुन, पृ. 85
२. वरूण के बेटे - नागार्जुन, पृ. 111
३. नई पौध - नागार्जुन, पृ. 30

बाबू नरपतनारायण सिंह ने कभी अभद्र व्यवहार किया था, वह मंजुमुखी देवी से कहती है- 'मैं बंगले पर नहीं जाऊँगी, चाची जी। बाबूजी बड़े बदतमीज हैं आपके....।' नाच सिखानेवाली के इस कथन में बाबूजी के करतूतों के प्रति विद्रोही होने का ही आभास मिलता है। नरपत बाबू की बेटी मृदुला-जो शादी के छः महीने बाद ही विधवा हो गई थी-के प्रति नरपत बाबू उपेक्षा की भाव रख रहे थे। वह छब्बीस साल की होने वाली थी। पिता की इस उदासीनता को देखते-सहते उसका धैर्य खो जाता है और वह अभिनन्दन वाले दिन ही अपने प्रेमी के साथ घर से भाग जाती है। घर से भाग निकलना ही उसका अपने पिता के करतूतों के प्रति विरोध भाव का परिचायक है। घर से भागने से पहले वह पत्र के माध्यम से अपने बाप से सवाल पूछती है- 'प्रान्त में कोई भी शुभ कार्य नहीं जिसे आपके आशीर्वादों से वंचित होना पड़ा हो। सांड सम्मेलन से लेकर साधु-सम्मेलन तक का उद्घाटन आपने किया है। अनाथालय, विधवाश्रम, बहरों-गूँगों का स्कूल, पिंजरापोल, वानप्रस्थ-आश्रम.....जाने कितनी संस्थाओं को आपकी मदद मिलती रहती है। 'महिला मंगल समाज' तो खैर आपका अपना शिशु है। दसियों युवतियों ने आपकी छत्रछाया में वैधव्य के अभिशाप से छुटकारा पाया है।'

लेकिन मैं ?

'मेरी तरफ क्या कभी आपने ध्यान दिया ? क्वार की अगली पूनम को मैं छब्बीस वर्ष की हो जाऊँगी' इस प्रकार मृदुला अपने पिता की अन्यायों के प्रति कड़ा रूख अपनाती है और व्यंग करती है-''आपकी हीरक जयन्ती हुई, मेरी यह ताम्र-जयन्ती ही सही!''[१]

'उग्रतारा' उपन्यास की उगनी बाल विधवा थी। सुन्दरपुर मढ़िया का ही एक युवक कामेश्वर विधुर था और वह उगनी से प्रेम करता था। कामेश्वर के साथ भागने के प्रयास में पुलिस उसे गिरफ्तार करके जेल में डाल देती है। जेल का ही एक सिपाही भभीखन सिंह उससे शादी करता है, वह गर्भवती हो जाती है। लेकिन उगनी को भभीखन सिंह में 'घरवाला' तो जरूर मिल रहा था, पति नहीं मिल रहा था। वह भभीखन को छोड़कर अपने पूर्व प्रेमी कामेश्वर से शादी कर लेती है। इस कार्य में कामेश्वर की भाभी पूर्ण सहायता करती है। जब तक उगनी पुलिस की हिरासत में रही उस समय तक इस अन्याय के प्रति भाभी काफी अर्से तक कामेश्वर के कानों में कुलबुलाती रहीं। नवयुवकों की निष्क्रियता पर क्षोभ व्यक्त करते हुए दीप्त स्वर में उसने कहा- ''सुन्दरपुर मढ़िया के नौजवान गोबर हैं, ऐसा गोबर जिसपर ऊंगलियाँ रखो तो काठ बनेंगे, कंडे नहीं।''[२] कामेश्वर की भाभी और उगनी दोनों प्रगतिशील पात्र हैं जो अन्याय और शोषण के विरोध में संघर्ष करती दिखाई देती हैं।

---

१. अभिनन्दन - नागार्जुन, पृ. 132

२. उग्रतारा - नागार्जुन, पृ. 35

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित प्रमुख नारी पात्र अन्याय और शोषण के प्रति विद्रोही दिखाई पड़ती हैं। नागार्जुन ने इन पात्रों के माध्यम से यह दिखाना चाहा है कि समाज में रहनेवाली नारी सचेत हो चुकी हैं और वह पुरूषों के कारा में बंद होकर रहने वाली कोई चिड़िया नहीं हैं।

चतुर्थ अध्याय

नागार्जुन के उपन्यास : उपन्यास-कला के संदर्भ में

उपन्यास की शिल्प समस्या अन्य विधाओं की अपेक्षा थोड़ी जटिल है। अत: उपन्यास कला को समझने के लिए उसके शिल्प पर ध्यान देना आवश्यक है। किसी भी प्रकार की कला के रूप और विषय-वस्तु की पड़ताल करते समय यह नहीं भूलना चाहिए कि रूप की संरचना पूर्व निर्धारित योजना के तहत नहीं होती, बल्कि यह विषय-वस्तु द्वारा तय होती है। यही बात उपन्यास की कला और शिल्प के बारे में लागू होती है। रूप और विषय के इस प्रकार के अंतर्सम्बंध में रूप की भूमिका सक्रिय होती है। वह विषय वस्तु के साथ संगुम्फित होकर उस पर प्रभाव भी डालता है।

साहित्य के संदर्भ में शिल्प का अभिप्राय है- साहित्यिक कृति का निर्माण अथवा रचना-प्रक्रिया। अर्थात् साहित्यकार अपने मनोभावों की अभिव्यक्ति में जो ढंग या विधान प्रयुक्त करता है वही 'शिल्प' के नाम से जानी जाती है। पाश्चात्य (कैम्बेल डवलेड, पर्सी, लुब्वक, कारपेन्टर, कॉनर, डेविसडचेज, हेनरी वारेन आदि) एवं भारतीय (डॉ॰ लक्ष्मी नारायण लाल, डॉ॰ सरोजिनी त्रिपाठी, इन्द्रनाथ मदान, कैलाश बाजपेयी, डॉ॰ श्री नारायण अग्निहोत्री, जैनेन्द्र कुमार आदि) समीक्षकों ने शिल्प को आंतरिक एवं बाह्य दृष्टि से विवेचित किया है। शिल्प के आंतरिक पक्ष से अभिप्राय है- रचना संबंधी वे समस्त प्रक्रियाएँ जो रचनाकार के मस्तिष्क में घटती है एवं शिल्प के बाह्य से अभिप्राय उन समस्त शब्द-योजना, भाषा-सौष्ठव तथा अन्यान्य उपकरणों से है, जिनके माध्यम से रचनाकार अपने मनोभावों को अभिव्यक्त करता है। मानव जीवन के वैविध्यपूर्ण चित्रों को जीवन के प्रत्येक पक्ष को सहजता, स्वाभाविकता एवं विश्वसनीयता के साथ उद्घाटित करना ही समीक्षकों की दृष्टि में श्रेष्ठ उपन्यास-कला है। अतएव उपन्यास-कला की सार्थकता में शिल्प-विधान की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है।

किसी रचनाकार के पास अभिव्यक्ति के लिए एक निश्चित विषय-वस्तु होती है। रचना की बाह्य प्रक्रिया 'विषय' और उसकी आंतरिक प्रक्रिया 'वस्तु' होती है। विषय को वास्तविक आधार वस्तु द्वारा प्रदत्त होता है। अत: निश्चित रूप से विषय को वस्तु में परिणत होना ही पड़ता है। इसलिए कथा-साहित्य में विषय की अपेक्षा वस्तु अत्यधिक महत्वपूर्ण हो जाती है और वस्तु को अनुभव के धरातल से प्राप्त करके कथाकार जिस माध्यम द्वारा प्रस्तुत करने का प्रयत्न करता है वह उपन्यास-कला का शिल्प कहलाता है।

उपन्यास के शिल्प की सार्थकता और सफलता विषय-वस्तु के ठीक-ठीक सम्प्रेषण के साथ जुड़ी हुई है। कथाकार के सामने वस्तु के चुनाव के साथ साथ उसके अनुरूप उसे प्रस्तुत करने के लिए शिल्प के चुनाव की समस्या भी रहती है। शिल्प का शाब्दिक अर्थ कला का कौशल है। शिल्प का संबंध भाव, विचार, लक्ष्य और अनुभूति पक्ष की अपेक्षा भाषा-शैली और विधा पक्ष से अधिक जुड़ता है।

हिन्दी में उपन्यास के पुराने ढाँचे को सबसे पहले प्रेमचन्द ने तोड़ा। उन्होंने उपन्यास के एक नए ढाँचे का निर्माण किया। प्रेमचन्द के पूर्ववर्ती उपन्यासों में मनोरंजक कथाओं को अधिक महत्व दिया जाता था। उसमें काल्पनिक व्यक्ति-चरित्र, अस्वाभाविक घटनाएँ, परिस्थितियाँ अविश्वसनीय और अश्चर्यजनक कौतूहल उत्पन्न करनेवाली होती थी। प्रेमचन्द ने सर्वप्रथम उपन्यास में मानव-जीवन को आधार बनाया था। उनका मानना था कि मानव चरित्र पर प्रकाश डालकर उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है। अत: उन्होंने औपन्यासिक शिल्प में जीवन यथार्थ को महत्वपूर्ण स्थान दिया और उपन्यास को वास्तविक और ज्यादा विश्वसनीय बनाया।

प्रेमचन्द परवर्ती उपन्यासों में परम्परागत शिल्प विधान को तोड़कर मनुष्य के बाह्य जीवन यथार्थ के बजाय, उसके आंतरिक जीवन को अर्थात् मनुष्य के मानसिक जगत को आधार बनाया गया। प्रगतिशील कथाकारों ने समाजवादी विचारधारा से प्रेरणा लेकर मानव-व्यक्तित्व को अपने उपन्यासों में आधार बनाया। प्रगतिशील कथाकारों के शिल्प के प्रति सजगता का लक्ष्य करके डॉ॰ शिवकुमार मिश्र ने लिखा है कि "इनके उपन्यासों का एक प्रधान आकर्षण गहरी समस्याओं, दार्शनिक ऊहापोह, सामाजिक चिन्तन तथा मनोवैज्ञानिक भूमिकाओं के बावजूद उनका सजीव कथानक तथा उसे पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करनेवाली उनकी जीवंत चरित्र सृष्टि ही है। यदि कथा में ही जान नहीं, तो गहरे से गहरे और मूल्यवान से मूल्यवान निष्कर्षों का भी किसी के लिए क्या अर्थ होगा।"[१] इससे स्पष्ट है कि वर्तमान उपन्यासकार के लिए शिल्प-विधान के निर्माण में कथा, मानव-चरित्र और जीवन-दर्शन का होना अनिवार्य है।

4.1. नागार्जुन का शिल्पगत वैशिष्ट्य

नागार्जुन के उपन्यासों में कथा-संयोजन सहज और वास्तविक धरातल पर हुई है। वे अपने आस-पास की वास्तविकताओं और परिवेश से ही कथानक को चुनते हैं। उपन्यासों के विषय-वस्तु के अनुरूप ही कथानक का वे चुनाव करते हैं। यही कारण है कि कलाकारिता या जीवन-

---

१. प्रगतिवाद - शिवकुमार मिश्र, पृ॰ 97-98

दर्शन उनके कथानकों के सिर पर चढ़कर नहीं बोलता है और कल्पना की अतिशयता भी नहीं दिखाई देती है। उन्होंने स्वीकार भी किया है कि -''रचना के पहले और बाद का मेरा समूचा ध्यान विषय-वस्तु (कंटेंट) पर होता है। फर्म (बहिरंग) और टेकनीक (कौशल या रचना-प्रकार) पर आवश्यकता से अधिक ध्यान मैंने कभी नहीं दिया।''[१]

मिथिला जनपद से संबंध होने के कारण नागार्जुन वहाँ की धरती से, जीवन से अपना कथानक चुनते हैं। अत: उनके उपन्यासों का कथानक-संयोजन जटिल न होकर सहज-सरल और सामाजिक होता है। वे अति कल्पना का सहारा नहीं लेते, इसलिए उनके कथानक सामान्य जीवन-प्रसंगो के पर्याय बन गए हैं। घटना, प्रसंग, बात और पात्र सभी इतने सामान्य होते हैं कि वे हमारे आस-पास के दुनिया में खड़े प्रतीत होते हैं, यही स्वाभाविकता नागार्जुन के यथार्थ की ताकत है। व्यक्तिगत स्तर पर घटी घटनाओं को सामाजिक स्तर दे देना नागार्जुन के उपन्यासों की बड़ी विशेषता है। उनके जीवन की वास्तविक घटनाएँ कल्पना के माध्यम से कथानक के रूप में उनके उपन्यास में व्यापक जगह बना लेती है।

नागार्जुन के प्रसिद्ध उपन्यासों का कथानक उनके व्यक्तिगत जीवन से सीधा जुड़ा हुआ है। 'रतिनाथ की चाची' शीर्षक उपन्यास में रतिनाथ स्वयं नागार्जुन हैं और उनके जीवन में घटित घटनाएँ रतिनाथ के जीवन से संबंधित है। नागार्जुन के अपने जीवन के घटना की स्मृति शेष है। जब उसके पिता उसकी माँ को दबोचे हुए हैं, मारे क्रोध के उसका गला घुट रहा है और वह गरीब औरत घिघिया रही है। उपन्यास के इस घटना का वर्णन इस प्रकार होता है ''रतिनाथ की बीमार माँ बिस्तर पर उत्तान लेटी पड़ी है और जयनाथ रूद्र रूप धरकर बेचारी की छाती पर बैठा है, एक नहीं उपन्यास में ऐसी अनेक घटनाएँ हैं जो नागार्जुन के जीवन में घटित हुई हैं। रतिनाथ के पिता के द्वारा चाची का गर्भवती होना, रतिनाथ का बचपन में संस्कृत का अध्ययन, पुरोहिती करने का ध्येय आदि ऐसे ही प्रसंग हैं। कथानक का आरंभ, बीच में रतिनाथ की शिक्षा का प्रबंध तथा अंत आदि वास्तविक घटनाओं पर आधारित है और शेष काल्पनिक। इसीलिए इस उपन्यास की कथा-योजना सहज और सरल है। जटिल और दुर्बोध्य नहीं।''[२]

'बलचनमा' की कहानी नागार्जुन ने अपने गाँव के भूमिहीन परिवार से लेकर निकटता से महसूस करके लिखी है। इसी कारण इस उपन्यास की कथा-योजना भी सरल और सीधी है। कथा के आरंभ में दो विरोधी शक्तियों का वर्णन है जो कथानक के विकास, संघर्ष और अंतिम परिणति की ओर संकेत करती दिखाई देती है।

संरचना या शिल्प के स्तर पर नागार्जुन प्राय: एक विधि अपनाते हुए दिखाई देते हैं। उपन्यासों के आरंभ में वह अक्सर ही दो विरोधी शक्तियों का ताना-बाना बुनते हैं। 'बलचनमा'

---

१. नागार्जुन की चुनी हुई रचनाएँ (भाग 3)- सं. शोभाकांत, पृ॰ 309

२. नागार्जुन का उपन्यास साहित्य : समसामयिक संदर्भ - डॉ॰ सुरेन्द्र कुमार यादव, पृ॰ 170-171

उपन्यास में ये शक्तियाँ जमींदार और बलचनमा के रूप में देखी जा सकती है। 'बाबा बटेसरनाथ' में भी इस विधि का प्रयोग किया है। 'दुखमोचन' उपन्यास की कथा-संयोजन के केन्द्र में दुखमोचन जैसे आदर्शवादी मगर कर्मशील चरित्र को रखा गया है। इस उपन्यास में भी नागार्जुन ने कथा-संयोजना या शिल्पविधि का तरीका 'बलचनमा' और 'बाबा बटेसरनाथ' जैसा ही अपनाया है। इस प्रकार के शिल्प या कथा संयोजना के तरीकों का संबंध नागार्जुन की जीवन दृष्टि से है।''[१]

विरोधी शक्तियों में संघर्ष की शिल्पविधि को नागार्जुन के 'वरूण के बेटे' उपन्यास में मछुओं और पोखर को हड़पनेवाले जमींदार के बीच की लड़ाई के माध्यम से देखा जा सकता है। 'नई पौध' अनमेल विवाह की समस्या से संबंधित है, पर विरोधी शक्तियों का संघर्ष वहाँ भी है। 'उग्रतारा' उपन्यास की कथानक वास्तविक घटना पर आधारित है। इसी प्रकार 'जमनिया का बाबा' उपन्यास की कथानक नागार्जुन के जीवन में घटित घटना से संबंधित है।

4.2. नागार्जुन के उपन्यास : भाषा और शैली

भाषा अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। अभिव्यक्ति किसी व्यक्ति के भावों-विचारों, आशा-आकांक्षाओं, इच्छाओं की ही होती है। मानव जीवन में होनेवाली परिवर्तनों के साथ-साथ भाषा का रूप भी बदलता जाता है। अपने मनोभावों को दूसरों तक पहुँचाने के लिए रचनाकार के पास भाषा ही एकमात्र साधन है। साहित्यिक भाषा के स्वरूप निर्माण में रचनाकार का अपना व्यक्तित्व भी महत्वपूर्ण होता है, इसी कारण एक विशेष कालखण्ड के साहित्यकारों की भाषा में विविधता दृष्टिगोचर होती है। डॉ॰ परमानन्द श्रीवास्तव के शब्दों में-''विशिष्ट सार्थक अनुभवों की पहचान रचना में भाषा के स्तर पर ही की जा सकती है, क्योंकि रचना को जाँचने का वही पहला प्रामाणिक साधन है- कभी-कभी धोखे में डालने के बावजूद अधिक विश्वसनीय साधन है।''[२]

उपन्यास की भाषा में स्वाभाविक प्रवाह, सरलता, सहजता एवं गंभीरता आदि गुणों का होना आवश्यक है। इसके अभाव में लेखकीय संवेदना का रूप खण्डित होकर सारे अर्थ धुँधले पड़ जाते हैं। पात्रों के व्यक्तित्व को साकार रूप भाषा ही प्रदान करती है और विभिन्न परिस्थितियों का अंतरंग चित्रण कर उसकी निरीक्षण एवं व्याख्या प्रस्तुत करती है। नागार्जुन के मत में- ''वाक्यों या शब्दों का समूह नहीं होती भाषा। जीवन का समूह जरूर भाषा को कह सकते हो।''[३]

नागार्जुन अपने भाषा प्रयोग के लिए हिन्दी उपन्यास साहित्य में रेखांकन योग्य हैं।

---

१. नागार्जुन का उपन्यास साहित्य : समसामयिक संदर्भ - डॉ॰ सुरेन्द्रकुमार यादव, पृ॰ 172
२. उपन्यास का यथार्थ और रचनात्मक भाषा - डॉ॰ परमानन्द श्रीवास्तव, पृ॰ 115
३. नागार्जुन : एक लम्बी जिरह - विष्णु चन्द्र शर्मा, पृ॰ 102

उच्चवर्ग, निम्नवर्ग, ग्रामीण-नागरिक, स्त्री-पुरूष के बौद्धिक-मानसिक पार्थक्य को ये अपने भाषा प्रयोग में बखूबी व्यंजित करते हैं। नागार्जुन के उपन्यासों में प्रयुक्त भाषा के तेवर उनको जनता का ही लेखक प्रमाणित करते हैं। उनकी उपन्यास भाषा सीधी व सपाट होने के साथ ही साथ अर्थवान और सार्थक है। नागार्जुन भाषा को मात्र शब्दों का संयोजन नहीं मानते वरन् वे संयोजन से प्राप्त होने वाले अर्थ को महत्व देते हैं।

नागार्जुन का भाषा-कोश अत्यंत समृद्ध है। इस समृद्धि का सबसे बड़ा रहस्य ग्रामीण एवं शहरी दोनों परिवेशों से उनका गहरा तादात्म्य है। परिवेश विशेष से जुड़ी घटनाएँ एवं पात्र इनके भाषा प्रयोग से अत्यंत स्वाभाविक हो उठते हैं। कभी-कभी ये मिथिला के ठेठ गँवई के शब्दों से भाषा में जीवंतता का पुट ला देते हैं।

नागार्जुन ने भाषा के स्तर पर नवीन दृष्टिकोण का परिचय दिया है। उन्होंने भाषा की कृत्तिमता और जड़ता को तोड़कर उसके सहज प्रयोग पर अधिक बल दिया। ग्रामीण परिवेश से जुड़े रहने के कारण उनके कथ्यों का जुड़ाव भी प्राय: ग्राम से ही रहा है। यही कारण है कि उनकी भाषा में प्रेमचन्द के कथा-साहित्य में दिखाई पड़ने वाली मिट्टी की गंध और सहजता व्याप्त है। नागार्जुन के भाषा की बुनावट प्रयासहीन और सहज है। कारण यह है कि किसी घटना को लेकर उसके मन में जो प्रतिक्रियाएँ होती हैं, जो भाव आते हैं, उन्हें वे सरल और स्वाभाविक भाषा में व्यक्त करने की चेष्टा करते हैं। वे चाहते हैं कि जिस जिंदगी और परिवेश को वे अपने कथानक का आधार बना रहे हैं, भाषा उसी से जुड़ी हो। वे सामान्य जन की सामान्य भाषा को ही अपनी कला के अनुकूल ढालते हैं और अपनी क्षमतानुसार उसे तराश कर साहित्यिक स्तर भी प्रदान करते हैं।

नागार्जुन के अधिकांश उपन्यास ग्रामधर्मी हैं-आञ्चलिक नहीं। उनकी कथाभूमि अंचल है किन्तु उनमें आञ्चलिकता नहीं है। उनके कई उपन्यासों की कथा नागर पृष्ठभूमि पर निष्पन्न होती है, किन्तु वह नगर का ऐसा हिस्सा होता है, जिसमें गाँव से आए ग्रामीण संस्कार वाले मामूली लोग होते हैं। नागार्जुन की भाषा कोशीय नहीं है, सीधे जीवन से आई है। इसलिए इसमें खेत व खलिहान, चौपाल और पनघट की गंध है। ''यह एक ऐसे वातावरण का निर्माण करते हैं जिसमें उनके पात्र जीते मरते हैं, आर्थिक विषमताओं और सामाजिक प्रताड़नाओं को झेलते हैं, उनसे संघर्ष करते हैं तथा इनके परिणामस्वरूप हारते हैं या जीतते हैं।''[१]

नागार्जुन के उपन्यासों की भाषा यथार्थ जीवन-संदर्भों की भाषा है। उनके उपन्यासों में गाँव के अछूते शब्द तथा ग्रामीण भाषा-शैली का उपयोग किया गया है। उनके उपन्यासों में विशेष लोक-जीवन का चित्रण होने के कारण विशेष लोक-संदर्भ तथा लोक-संचेतना की अभिव्यक्ति

---

१. प्रतिनिधि हिन्दी उपन्यास (पहला भाग) - डॉ॰ यश गुलाटी, पृ॰ 173-174

हुई है। नागार्जुन ने अपने जातीय परिवेश के दबाव में मैथिल शब्दों के समयानुकूल प्रयोग किए हैं। इस प्रयोग से उनके उपन्यासों की भाषा बोझिल और जटिल न बनकर स्वाभाविक बन गई है। उनके वाक्य प्राय: छोटे-छोटे होते हैं। कथ्य की गंभीरता के चलते उनके उपन्यासों में भाषिक दाँव-पेंच नहीं के बराबर हैं।

नागार्जुन की उपन्यास भाषा को लेकर आलोचकों के विभिन्न मत रहे हैं। मैथिली मिश्रित हिन्दी का प्रयोग कर नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में भाषा को एक नयी भंगिमा दी। इससे उनके उपन्यासों का सम्पूर्ण परिवेश उजागर हुआ। नागार्जुन का शब्द-भण्डार जीवन के सभी क्षेत्रों के शब्दों से भरा है। उनमें तत्सम शब्दों की अभिजात भंगिमा है, तो आम आदमी की सहज अभिव्यक्ति भी। इस संबंध में डॉ. इन्द्रनाथ मदान के विचार महत्वपूर्ण है-''देहाती जीवन की साधारण घटनाओं को सूचित करने में, उसके छोटे-छोटे सुखों के सूक्ष्म निरीक्षण तथा सजीव चित्रण में, जमींदारों के निरंकुश व्यवहार तथा उत्पीड़न में, नए जीवन के स्पंदन में, अंचल विशेष के मुहावरे को पकड़ने में, तद्भव शब्दों के प्रयोग में, पग-पग पर परिवेश की गंध में, उपन्यास का ताना-बाना बुना गया है।''[१]

नागार्जुन के उपन्यासों में साहित्यिक तत्सम प्रधान भाषा

नागार्जुन के उपन्यासों में ऐसे अनेक स्थल हैं, जिनमें साहित्यिक काव्यमयी भाषा का प्रयोग हुआ है। ऐसे प्रयोग से भाषा के कलात्मक सौन्दर्य की वृद्धि हुई है। कुछ अंश उदाहरणार्थ द्रष्टव्य हैं- ''अधपकी बालियों की मीठी सरसराहट हेमंत की हल्की बयार को मादक खुशगवार प्रदान कर रही थी। उत्तरायण की ओर बढ़ते सूरज की स्वर्णिम किरणें उसमें रूपहला और चंदनकांत आलोक भरती थीं। शरद की शेष प्रकृति धान की इन फसलों में गंध-गौरव डाल गई थी। फलित धानों का वह प्रिय दर्शन पारावार रूपउली के एक-एक व्यक्ति को पुलकित किए हुए था।''[२] 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास का एक अंश- 'काशी बहुत ही विलक्षण और बड़ा ही विचित्र स्थान है। ऐसा लगता है, मानो हिन्दुत्व और भारतीयता के सारे गुण और सारे दुर्गुण यहाँ बाबा विश्वनाथ की शरण में दुबके पड़े हैं।'

'कुंभीपाक', 'वरूण के बेटे', 'दुखमोचन' आदि उपन्यासों में भी साहित्यिक तत्सम प्रधान भाषा का प्रयोग नागार्जुन ने किया है। 'वरूण के बेटे' उपन्यास में व्यवहृत तत्सम प्रधान भाषा का एक उदाहरण द्रष्टव्य है- 'परछाईं में तारे जँच नहीं पा रहे थे क्योंकि छोटी-बड़ी हिलकोरें पानी को चंचल किए हुए थीं। कदली थंभों की यह नाव पोखर की छाती पर हचकोले खा रही थी।'

---

१. आज का हिन्दी उपन्यास - डॉ॰ इन्द्रनाथ मदान, पृ॰ 47
२. बाबा बटेसरनाथ - नागार्जुन, पृ॰ 98

नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में अधिकांशत: सामान्य बोलचाल की सार्वजनीय भाषा का ही प्रयोग किया है। 'बलचनमा' उपन्यास में सामान्य बोलचाल की भाषा का ही अधिकतर प्रयोग हुआ है, जो पाठकों के लिए दुरूह नहीं है-''मेरी छोटी बहन रेबनी चौदहवाँ पार कर पन्द्रहवें में पैर रख चुकी थी, चेहरा मुहरा खुल आया था। जवान हो रही थी। गौने की यही तो उमर है, भैया! हमारी बिरादरी में शादी पर उतना ध्यान नहीं दिया जाता है जितना कि गौने पर।''[१]

'दुखमोचन' उपन्यास में भी सामान्य बोलचाल की भाषा दर्शनीय है- 'फसल इस बार रबी की अच्छी हुई थी और आम भी खूब फरे थे। गाँव के अन्दर आमों के जितने भी पेड़ थे, टिकोलों के साथ-साथ उनके पत्ते और टहनियाँ तक झुलस गई थीं। लेकिन अमराइया और कलम-बाग गाँव के बाहर थे। उन तक आँच नहीं पहुँच पाई, वे बच गए थे।' 'जमनिया का बाबा', 'कुंभीपाक', 'रतिनाथ की चाची' आदि उपन्यासों में भी सामान्य बोलचाल की भाषा का प्रयोग नागार्जुन ने किया है।

अंचल विशेष की बोली-जनपदीय भाषा

नागार्जुन के उपन्यासों में अंचलीय भाषा का भी प्रयोग यथास्थिति हुआ है। उन्होंने अंचलीय पात्रों की विशेष पहचान बनाने के लिए उन्हीं के द्वारा जनपदीय शब्दों का उच्चारण कर भाषा को और अधिक प्रभावी बनाया है। अंचलभाषी पात्रों के व्यक्तित्व में ऐसे शब्दों के प्रयोग से और अधिक निखार आ गया है। नागार्जुन ने अंचलीय जीवन को अधिक निकट से देखा, परखा तथा जाना है, इसलिए उनके उपन्यासों में आंचलिक भाषा का प्रयोग बखूबी हुआ है। विषय चित्रण में इन शब्दों के माध्यम से जीवंतता आ गई है। प्रसंग और पात्र के अनुकूल कहीं-कहीं पूरे वाक्य जनपदीय भाषा में आए हैं। नागार्जुन के उपन्यासों में प्रयुक्त जनपदीय भाषा को निम्न रूपों में देखा जा सकता है-''रामेसरी ने अपनी दाहिनी हथेली पहले तो उसके कपार पर रखी, फिर छाती के बीच ले गयी। फिर उसकी एक हथेली को अपने कपार से लगाया और बोली-नहीं गे, कौन कहता है कि बुखार भितराया हुआ है।''[२] 'बलचनमा', 'वरूण के बेटे', 'बाबा बटेसरनाथ' आदि उपन्यासों में भी अंचल विशेष की बोली का प्रयोग मिलता है। 'बलचनमा' में व्यवहृत जनपदीय भाषा का एक उदाहरण- 'अरे यह तो मेरे बखारों को खुक्ख कर देगा। डेढ़ सेर इस जून, डेढ़ सेर उस जून। छोकड़े का पेट तो देखो, कमर से लेकर गले तक मानो बखिया है। कैसा बेडौल, कितना भयानक है, मइया री मइया!'

---

१. बलचनमा - नागार्जुन, पृ० 58
२. नई पौध - नागार्जुन, पृ० 68

शब्द प्रयोग

नागार्जुन के उपन्यासों में तत्सम, ग्रामीण एवं शहरी शब्द, अरबी-फारसी, अंग्रेजी और बंगला के शब्दों का प्रयोग मिलता है।

तत्सम शब्द

ब्याह, पंचमी, तांत्रिक (बलचनमा), मातृहीन, नृशंस, रूद्र, पंचमाक्षर (रतिनाथ की चाची), चन्द्रवदन, स्पंदन, तरूण (उग्रतारा), उन्निद्र, दुश्चिंता, स्वस्तिवाचन (नई पौध), सहस्रशीर्षा, लतावितान, स्निग्ध (दुखमोचन), सौभाग्य, ग्रीष्मांत, तर्क-पंचानन (बाबा बटेसरनाथ), अशंक, निद्रित, सूर्य (कुंभीपाक), नक्षत्र-खचित, उपालंभ, निशा, आगंतुक (वरूण के बेटे), आडम्बर, बाघम्बर, नैवेद्य (जमनिया का बाबा), रात्रि, निशीथ, स्वच्छ (गरीबदास) आदि।

ग्रामीण शब्द

सुकुल, दतुअन (जमनिया का बाबा), जिनगी, पिरीतिया, परसाद (वरूण के बेटे), अलच्छ, तिरिया (कुंभीपाक), गरदन, अच्छत (बाबा बटेसरनाथ), बबुअन, बुढ़ऊ (दुखमोचन), दच्छिन, शकल, गुनमंती (नई पौध), छोकरा, जुगाड़, टटोरकर (उग्रतारा), टंघार, कुकुरमाछी, लौंडा, चूतड़ (बलचनमा) आदि।

अरबी-फारसी के शब्द

नागार्जुन के उपन्यासों में अरबी-फारसी के प्रचलित तथा तद्भव शब्द-रूपों के प्रयोग मिलते हैं। ये शब्द सामान्य व्यवहार में घुल मिल गए हैं। चन्द्रेश्वर कर्ण के अनुसार- "प्रेमचन्द और नागार्जुन एक ही गाँव को कई स्तरों पर चित्रित करते हैं, लेकिन भाषा के स्तर पर बहुत सारी एकरूपता होते हुए भी एक अंतर है कि जहाँ प्रेमचन्द अरबी-फारसी के प्रचलित जन-जीवन में घुले-मिले शब्दों का प्रयोग करते हैं, नागार्जुन ऐसे शब्दों का प्रयोग करने में नहीं हिचकते जो आमफहम नहीं हैं या जिनके लिए उर्दू हिन्दी कोश देखना अनिवार्य हो जाता है। यह काम आश्चर्यजनक नहीं है कि इसके बाद भी वे भाषा में रचे बसे लगते हैं।"[१]

---

१. दस्तावेज - (अक्टूबर-जनवरी), पृ॰ 40

उपन्यासों में प्रयुक्त अरबी-फारसी शब्दों को उदाहरणार्थ देखा जा सकता है- गुफ्तगू, दरम्यान, दहशत (कुंभीपाक), निमस्तीन, कुर्क, तरन्नुम (वरूण के बेटे), मुदा, वक्त, पैगाम (रतिनाथ की चाची), वगैरह, गुंजाइश, बेहद (जमनिया का बाबा), निगाह, तख्तपोश, मोसम्मात (बलचनमा), पुश्तैनी, दिलचस्पी, आलीशान (अभिनन्दन), अंदाज, यकीन, बाज़ार (उग्रतारा), अफवाह, आहिस्ते, दर्म्यान (नई पौध), बेइमानी, बरफीली, कैफियत (बाबा बटेसरनाथ), दरअसल, पेशानी, जरीब (दुखमोचन), तख्तपोश, बख्तवार, गनीमत (गरीबदास) आदि।

अंग्रेजी शब्द

ब्लेड, रिपोर्टर, पार्टी (दुखमोचन), मिनिस्ट्री, यूनिवर्सिटी, आर्डिनेन्स (बाबा बटेसरनाथ), कंट्रोल, रायल एक्सचेंज, पेट्रोमैक्स (नई पौध), क्वार्टर, रजिस्टर (उग्रतारा), मॉडल, स्टेनलैस (अभिनन्दन), डिविजन, रिपोर्ट, कलक्टर (बलचनमा), वार्ड, स्टाफ, सुपरिन्टेण्डेंट (जमनिया का बाबा), स्पीकर, प्राइमरी, मेमोरेंडम (वरूण के बेटे), प्रोविजन, बुकसेलर, स्ट्रेचर (कुंभीपाक), रोमांस (रतिनाथ की चाची), रिटायर्ड, आर्डर, इमरजेंसी (गरीबदास) आदि।

बंगला शब्द

नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में प्रसंगवश बंगला के शब्दों का भी प्रयोग किया है। यह उनके भाषा की बहुज्ञता का परिचायक है। यथा-बासा, माछ (कुंभीपाक), बाड़ी (नई पौध), भालो बासा (जमनिया का बाबा), पीसी, बाड़ी, जास्ती (बलचनमा) आदि।

मुहावरे और लोकोक्तियाँ

नागार्जुन ने भाषा में सौन्दर्यात्मकता के प्रतीक लोकोक्ति मुहावरों आदि का भी अपने उपन्यासों में यत्र-तत्र प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ- 'मन चंगा तो कठौती में गंगा' (उग्रतारा), रोआ खड़ा होना, बेकार मन शैतान का घर, घर में भूजी भाँग नहीं (बलचनमा), दाल में काला, कहीं ढेर का ढेर कहीं अंधेर का अंधेर (कुंभीपाक), आग लगंते झोपड़ा जो निकले सो लाभ, दूर के ढोल सुहावन (वरूण के बेटे), रोम-रोम कंटकित होना, पौ फटना, यहाँ न लागहिं राउर माया (रतिनाथ की चाची), नीम की डालों से मिसरी के डले बरसना, दातों तले उंगली दबाना, सीने पर सील रगड़ना, कुप्पी इतना दिल (बाबा बटेसरनाथ) माले मुफ्त

दिले बेरहम (दुखमोचन), गंगा गए गंगादास जमुना गए जमनादास (अभिनन्दन) आदि।

शैली

साहित्यकार के चिन्तन की स्वाभाविक, सत्य और उचित अभिव्यक्ति शैली द्वारा ही होती है। अतएव शैली विषय-सम्बद्ध होती है। कृति की विषय-वस्तु या अनुभूति को किस रूप और आकार में संयोजित किया गया है इसका निर्धारण शैली ही करती है। विषय-वस्तु का उद्‌घाटन शैली रचना का क्रियाशील सिद्धांत है। ग्राम्य जीवन की संवेदनाओं को और जीवन यथार्थ से सम्बद्ध विषमताओं की अभिव्यक्त करने के लिए विशिष्ट शैली अपेक्षित है। जीवन और व्यक्ति को समझने वाले नागार्जुन ने अंचल को और अधिक आकर्षक तथा प्रभावी बनाने के लिए एकाधिक शैलियों का प्रयोग किया है। शैली के रूप में उनके उपन्यासों का अध्ययन निम्न शैलियों के अंतर्गत किया जा सकता है।

1. लोक कथात्मक शैली
2. वर्णन प्रधान शैली
3. आत्म कथात्मक शैली

1. लोक कथात्मक शैली

लोक जीवन और कथा का संबंध सदा रहा है। मौलिक रूप से प्रचलित कथा-साहित्य की इस रीति को आंचलिक कथाकारों ने जीवन की गति के साथ गूँथ दिया है। मानव और मानवेतर प्राणियों, पशु, पक्षी, भूत-प्रेत, परी, चुड़ैल, देवी और ग्राम-देवता आदि से इन कथाओं का संबंध रहता है। नागार्जुन ने 'बाबा बटेसरनाथ' और 'जमनिया का बाबा' उपन्यासों में लोक कथात्मक शैली का अधिक प्रयोग किया है। 'बाबा बटेसरनाथ' के प्रयुक्त इस शैली का एक अंश- ''बेटा, मैं न तो भूत हूँ, न प्रेत। मैं इस बरगद का मानव रूप हूँ। जिस वनस्पति राज की फलियों के बीज से मेरी उत्पत्ति हुई उन्हें वनदेवी ने प्रसन्न होकर यह वरदान दिया था कि तुम्हारी संततियाँ मनुष्य की हृदय की बातें अनायास समझ लेंगी और अपनी इच्छा के मुताबिक जब चाहे तब मनुष्य का रूप धारण कर सकेंगी। सो, मैं ठहरा इच्छाधारी। मुझसे डरना या मेरे विषय में किसी प्रकार की शंका करना बेकार है।''[१] 'जमनिया का बाबा' उपन्यास में प्रयुक्त लोक-कथात्मक शैली ''महाअष्टमी की रात में, देवी की प्रतिमा के सामने छै महीने का एक शिशु खड़ा किया गया।

---

१. बाबा बटेसरनाथ - नागार्जुन, पृ० 9

उसकी कमर में रेशमी वस्त्र का लाल टुकड़ा लपेटा हुआ था। गले में लाल फूलों की माला थी। माथे पर सिंदूर का टीका था।''

x x x

'बकरी के बच्चे के तरह, आदमी के उस बच्चे का सिर धड़ से अलग कर दिया गया। खून के फव्वारे देवी की तरफ छोड़े गए। शिशु मुंड को देवी के चरणों में महिसासुर के पास डाल दिया गया।'

2. वर्णन प्रधान शैली

इस शैली के अंतर्गत जीवन का रूपायन वर्णन के आधार पर होता है। घटनाओं और पात्रों की अधिकता के कारण अनेक प्रसंग जीवन की समस्याओं का उद्‌घाटन करते हैं। नागार्जुन ने प्राय: सभी उपन्यासों में सफलतापूर्वक वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया है। इस शैली का सफलतम प्रयोग उनके उपन्यासों में पात्र, चरित्र, वातावरण, प्राकृतिक परिवेश आदि का स्वाभाविक तथा जीवंत वर्णन आत्मीय भाव की उद्‌भावना करता है।

'बाबा बटेसरनाथ', 'रतिनाथ की चाची' एवं 'वरूण के बेटे' उपन्यासों में वर्णन प्रधान शैली का अधिक प्रयोग हुआ है। 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास से एक उदाहरण प्रस्तुत है जहाँ उपन्यासकार ने आमों के विभिन्न प्रजातियों एवं उनके स्वादों का वर्णन किया है– ''मालदह आमों का राजा है। बनारस की तरफ यही लंगड़ा कहलाता है। बम्बई में सबसे पहले पकने लगता है। किसुनभोग दुलरूआ ठहरा, जरा सी असावधानी से उसमें पीलू पड़ जाते हैं। राढ़ी, भदई अपने पतले छिलके और सुरभित माधुर्य के लिए प्रसिद्ध है। उसका मौसम आधा सावन और भादो है। मोहर ठाकुर की भदई छोटी और नुकीली होती है। राढ़ी का छिलका पीला और गूदा थोड़ा लाल होता है.....।''[१]

'वरूण के बेटे' उपन्यास में मछलियों का वर्णन वाला एक दृश्य– ''लाल लाल मुँहवाले रेहू अपनी रूपहली और सुरमई छिलकों में खूब ही फब रहे थे। चिकनी–चपटी रूपहली मोदनी पर तो निगाहें टिकती ही नहीं थी। भुन्ना का भी यही हाल था। नैनी रेहू का ही सगा लगता था, आकार–प्रकार के मिलने पर भी वजन में कम।''[२]

3. आत्म कथात्मक शैली

नागार्जुन के कुछ उपन्यासों में आत्म–कथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। इस शैली के

---

१. रतिनाथ की चाची – नागार्जुन, पृ. 130

२. वरूण के बेटे – नागार्जुन, पृ. 68

प्रयोग से पात्रों की अनुभूतियाँ भाषा के रूप में फूटी दिखाई पड़ती है, साथ ही उनका भोगा हुआ यथार्थ भी चित्रित हुआ है। 'बलचनमा' उपन्यास में बलचनमा की पूरी कथा आत्म-कथन शैली में चित्रित हुई है। 'बलचनमा' उपन्यास में आत्मकथात्मक शैली का एक उदाहरण- ''बचपन में मालिक लोगों की बहुत जूठन मैंने खायी है। x x x इन लोगों के यहाँ दामाद, बहनोई, संबंधी या ससुर जैसे मेहमान आते ही रहते हैं। उनके आने पर बढ़िया चावल कोठार से निकलता। अरहर की पुरानी दाल निकलती। x x x ऐसे अवसरों पर हम अभागों का भाग्य चमक उठता। कायदे के अनुसार मेहमानों के आगे खाने-पीने की चीजें अधिक ही रक्खी जाती थीं। वह आधी या चौथाई ही खा पाते। बाकी जो बचता उससे हमारे जैसों की जीभ का सराध होता।''[१]

'जमनिया का बाबा' उपन्यास का एक उदाहरण प्रस्तुत है जिसमें आत्मकथन शैली का दर्शन होता है- ''मैंने बहुत सोच-समझकर जमनिया को अपना अड्डा बनाया। पहली बात तो यह थी कि मुझे पिछड़ी जातियों से विशेष प्रेम है। साधुओं का जितना आदर वे करती हैं. उतना और कोई नहीं करता। हमारे जैसों के लिए अनपढ़ भगत ही काम का साबित होता है।''[२]

'बाबा बटेसरनाथ'में भी आत्म कथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है- ''कभी-कभी अपना जीवन मुझको भार प्रतीत होता है और तब अपनी मौत मनाने लगता हूँ, लेकिन इस बस्ती का कोई नहीं चाहता कि मैं खत्म हो जाऊँ।''[३]

इस प्रकार अपनी बनावट और बुनावट के लिए नागार्जुन की भाषा-शैली सराहनीय है। इनकी भाषिक-संरचना की विशिष्टता का एक कारण शब्द-समूह में पर्याप्त विविधता भी है। नागार्जुन की भाषा में अंग्रेजी, उर्दू-फारसी, तत्सम, तद्भव, देशज, बंगला आदि शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है। ग्राम जीवन के कथाकार होने के कारण उनकी रचनाओं में मुहावरों और लोकोक्तियों का बखूबी प्रयोग हुआ है। नागार्जुन की भाषा-शैली चरित्रों की नियति और मानसिकता को उघाड़ने तथा व्यक्त करने में सफलता अर्जित की है।

4.3. नागार्जुन के उपन्यास : प्रासंगिकता की दृष्टि से

नागार्जुन मूलतः प्रगतिशील रचनाकार हैं। मार्क्सवाद में पूर्ण आस्था रखने के कारण समाज में हो रहे वर्ग-संघर्षों को अच्छी तरह जानते-पहचानते हैं। उनकी सहानुभूति श्रमजीवी किसान मजदूर वर्ग के साथ है। उन्होंने अपने समाज में निरंतर गिरते हुए मानव मूल्यों को देखा है। वे बचपन से ही बाल-विवाह, अनमेल-विवाह, छुआछूत, मूर्तिपूजा, बलि-प्रथा, भूत-प्रेत पर विश्वास, विधवा समस्या, वेश्या समस्या, शोषण की समस्या, राजनीतिक तिकड़म आदि को देखते आ रहे

---

१. बलचनमा - नागार्जुन, पृ. 18-19
२. जमनिया का बाबा - नागार्जुन, पृ. 16
३. बाबा बटेसरनाथ - नागार्जुन, पृ. 57

हैं। इन समस्याओं से उद्वेलित होकर उनके विचार लेखनी के माध्यम से फूट पड़ा है। डॉ. आशुतोष राय के अनुसार- ''नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में गरीबी, भूखमरी, दरिद्रता, उत्पीड़न, विषाद, अनमेल विवाह, विधवा-विवाह, जमींदारों का अत्याचार, कर्ज और श्रमिकों का शोषण आदि समस्याओं का वर्णन मिथिला के परिवेश के आधार पर किया है, किंतु यह सभी समस्याएँ राष्ट्रीय समस्याएँ बन जाती हैं''[१] नागार्जुन के उपन्यासों में उठायी गई समस्याएँ, अन्याय, शोषण, कुरीतियों के प्रति विद्रोह एवं विरोध की भावना एवं बिना किसी लाग-लपेट के बात कहने की साहस के कारण नागार्जुन के उपन्यास वर्तमान संदर्भ में आज भी प्रासंगिक बने हुए हैं। वे कबीर की तरह बात कहने की साहस रखते हैं। उनके इसी साहस का लक्ष्य करके विष्णु चन्द्र शर्मा कहते हैं- ''नागार्जुन ने कबीर के बाद आजाद भारतवर्ष के फटेहाल इंसानों को भीतर तक झकझोर दिया था।''[२]

नागार्जुन के प्राय: सभी उपन्यास वर्तमान संदर्भ में प्रासंगिक हैं। 'बलचनमा' में जमींदारों की शोषण-वृत्ति का चित्र प्रस्तुत हुआ है। उसके बाप के साथ जो अत्याचार मालिक द्वारा किया गया, वह बलचनमा की स्मृति में ज्यों की त्यों बनी हुई है। अपने तथा अपनी माँ-बहन पर होने वाले अत्याचार से विक्षुब्ध होकर शोषण की भट्टी में जलता हुआ बलचनमा क्रांतिकारी बन जाता है। वह सचेत होकर अन्याय और अत्याचार के विरूद्ध संघर्ष करता है।

वर्तमान समय और समाज में यह शोषण का शिलशिला ज्यों का ज्यों बरकरार है, सिर्फ शोषण का तरीका बदल गया है। संपतिशाली एवं सम्पन्न परिवार के औसत लोगों में कुछ बुराइयाँ आज भी देखने को मिलती है। बलचनमा अपने गाँव के जमींदारों के विषय में उल्लेख करता है- 'मुझे यही फिक्र थी कि जमींदारों का गाँव है। लुच्चे होते हैं ये लोग। असूल-तहसील का काम गुमस्ता-बराहिल के हवाले, घर-गृहस्थी की देख-रेख छुटभाइयों के हवाले, सेवा टहल का काम बहिया खवास के हवाले, बाकी बचे बेटा-नाती, भाई-भतीजा, सार-सरबेटा। सो बैठे-बैठे तास पीटेंगे, शतरंज खेलेंगे, शहर जाकर सिनेमा देख आयेंगे, बेकार मन शैतान का घर। खान-पान और आराम की कमी नहीं, काम करेंगे नहीं। किसी की लड़की सयानी हुई नहीं कि निशाना साधने लग जाते हैं।' 'बलचनमा' उपन्यास आज भी प्रासंगिक इसलिए बना हुआ है, क्योंकि उसमें चित्रित समस्याएँ वर्तमान समय की समस्याओं का ही चित्रण करती है। बलचनमा की लड़ाई अपनी हक की लड़ाई है। वह उपन्यास के अंत में लाठी की चोट खाकर बेहोश हो गिर पड़ता है, पर उसकी वह लड़ाई आज भी अपने हक को प्राप्त करने के लिए जारी है।

'वरूण के बेटे' उपन्यास में नागार्जुन ने मलाही-गोढ़ियारी के मछुओं के जिंदगी की अनेक समस्याओं को उभारा है। जमींदारी उन्मूलन के बावजूद जमींदारों की शोषण-वृत्ति समाप्त नहीं

---

३. नागार्जुन का गद्य साहित्य - डॉ॰ आशुतोष राय, पृ. 91
४. नागार्जुन : एक लम्बी जिरह - विष्णु चन्द्र शर्मा, पृ. 31

हुई थी। नौकरशाही, भ्रष्टाचार और कानूनी असंगतियों के चलते जनजीवन के साथ बेतुका खिलवाड़ अभी भी चल रहा था। मछुआ संघ के तरफ से कई मेमोरेंडम पटना और दिल्ली के महाप्रभुओं की सेवा में भेजे जा चुके थे। जिला अधिकारियों तक यह बात मौखिक और लिखित रूप में पहुँचायी जा चुकी थी। परंतु जनता के तथाकथित मालिकों के कान पर जूँ तक नहीं रेंग रहे थे। शासकों की यह उदासीनता जनता की उपेक्षा के ही सूचक हैं। वर्तमान समय में जनता की समस्याओं से संबंधित मेमोरेंडमों की यही स्थिति है, जैसा कि 'वरूण के बेटे' में चित्रित किया गया है। इस प्रकार अपने उपन्यासों में नागार्जुन ने जिन यथार्थों को चित्रित किया है, वे कम-बेश देश के प्रत्येक कोने में रहने वाली आम जनता की यथार्थ है।

नागार्जुन ने 'दुखमोचन' उपन्यास में टमका कोइली नामक ग्राम के बहाने जिन समस्याओं को उभारा है, ये सार्वदेशिक स्थिति की सूचक हैं। टमका कोइली गाँव गुटबंदी जैसी जिन समस्याओं से ग्रस्त है वह केवल इसी गाँव की बिडम्बना नहीं, अपितु समस्त देश के गाँवों की यही यथार्थ परिणति है। दुखमोचन गाँव के यथार्थ को मामी के समक्ष व्यक्त करता है- ''दुनिया समझती है कि गाँववाले बड़े भोले-भाले और शराफत के पुतले होते हैं, लेकिन यहाँ आकर देख जाए कोई....कौन सी बदमाशी छूटी है गाँववालों से। लोभ-लालच, छल-प्रपंच, झूठ-बेइमानी, ठगी और विश्वासघात.....वह कौन सा औगुन है जो यहाँ नहीं है।''[१] वर्ग-संघर्ष, सामाजिक असमानता, शोषण, अन्याय तथा पूँजीवाद का दोषपूर्ण वितरण इस उपन्यास की मूल समस्याएँ है और वे आज भी ज्यों की त्यों समाज में मौजूद हैं।

राजनीतिक दाँव-पेंच में नेताओं के साथ देने वाले और जी हुजूरी, करने वालों को काफी कुछ मिल जाता है और उनका विरोध करनेवालों को कुछ भी प्राप्त नहीं होता 'कुंभीपाक' में ऐसे ही एक स्थल का चित्रण जहाँ दिवाकर का मनोभाव व्यक्त हुआ है-''हाँ इतना तो है कि हर बुरे-भले काम में महाप्रभुओं का साथ देते रहोगे तो भौतिक लाभ अवश्य होगा। लड़का डिविजनल आफिसर बन जाएगा, भतीजे को भारत सेवक समाज की ओर से ठेकेदारी मिल जाएगी, छोटा भाई मुखिया होगा और भांजे को चीनी मिल में क्लर्की मिलेगी''[२]

नागार्जुन ने 'अभिनन्दन' उपन्यास में कांग्रेस प्रशासन की विसंगतियों और व्यक्तिपूजा के संसाधनों की खासी पड़ताल की है। सामाजिक स्तर पर नेताओं का अभिनन्दन वाला सिलसिला आज भी जारी है, जैसा कि 'अभिनन्दन' में दिखाया गया है। 'अभिनन्दन' में चित्रित नेताओं के क्रियाकलाप से यह स्पष्ट हो जाता है कि शासक वर्ग ऊपर से नीचे तक भ्रष्टाचार का गठजोड़ बना हुआ है। अधिकारी कर्तव्यच्युत और लक्ष्यभ्रष्ट हो गए हैं। चापलूस और चाटुकार अपनी स्वार्थ सिद्धि की हरसंभव प्रयास करते हैं। वर्तमान संदर्भ में यह उपन्यास प्रासंगिक बना हुआ है।

---

१. दुखमोचन - नागार्जुन, पृ. 100

२. कुंभीपाक - नागार्जुन, पृ. 74

इसमें सत्ता और दलालों की सही तस्वीरें पेश करके पिसते, दबते, छले जाते, अधिकारों से वंचित जनों को अगले संघर्ष भरे सफर के लिए तैयार किया गया है।

प्रासंगिकता की दृष्टि से 'जमनिया का बाबा' उपन्यास भी बहुत महत्वपूर्ण है। दो-तीन भू-स्वामियों ने ज्यादा से ज्यादा जमीन हड़पने के लिए जमनिया मठ की स्थापना कर डाली और एक जटाधारी औधड़ को लाकर मठ का महंत घोषित किया। मठ में विभिन्न प्रकार के अनैतिक कार्य चलते हैं, मठ में संतों को प्रसन्न रखने के लिए इमरतिया और जलेबिया जैसी नारियाँ हाजिर रहती हैं। उन्हें योगिनी और देवदासी का संबोधन किया जाता है, और वे बाबाओं के हवस की शिकार बनाई जाती हैं। मठ में बाँझ औरतों की कोख से बच्चा पैदा करने की विद्या सिखाई जाती थी। ढाका, काठमांडू होकर कीमती माल पहुँचता है, छोकरियाँ आती हैं और चीनी जासूस पनाह पाते हैं। "असंभव चमत्कारों का जाल बिछाकर दूर-दूर तक के लोगों को फाँसा जाता है। पिछड़ी जातियों की बहुएँ और बेटियाँ गुंडों की वासना का शिकार बनाकर छोड़ दी जाती है- जमनिया मठ अन्धी गढ़ी नहीं है तो क्या है?"[१]

जमनिया के बाबा जैसे मठाधीशों का पर्दाफाश करते हुए नागार्जुन ने धर्म, रूढ़ियाँ और पाखण्ड को अपनी कृतियों में खूब उकेरा है। साधु-संतो द्वारा धर्म के नाम पर पैदा की गयी मिथ्या धारणाएँ, ढोंग, आडम्बर, जालसाजी, धोखाधड़ी, अनैतिकता और छल-कपट को सामाजिक चेतना सम्पन्न हर व्यक्ति देख रहा है। अशिक्षितों और पिछड़ी जाति को अपने चाल की जाल में फँसाए हुए ऐसे ठगों की नागार्जुन ने 'जमनिया का बाबा' उपन्यास में पूरी खबर ली है।

आज के युग में भी अशिक्षितों और पिछड़ी जाति की औरतों में अंधविश्वास और साधुओं का प्रभाव दिखाई पड़ता है। साथ ही बाबा लोगों के मठ भ्रष्टाचार के अड्डे तो बने ही हुए हैं, उनकी पनाह में विदेशी तस्कर और एजेंट शरण लेते हैं और हमारे देश की एकता और अखण्डता को चकनाचूर करने में प्रयासरत हैं। इन ढोंगियों से हमें सावधान रहने की शिक्षा देने वाला यह उपन्यास वर्तमान संदर्भ में प्रासंगिक बना हुआ है।

नागार्जुन के समग्र उपन्यासों का विहंगावलोकन करने से यह पूर्णत: विदित हो जाता है कि उन्होंने राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक विकृतियों को उभारकर उनका विरोध किया है। अत: वर्तमान संदर्भ में उनके उपन्यास प्रासंगिक बने हुए हैं।

4.4. नागार्जुन के उपन्यास : उपलब्धियाँ

प्रेमचन्द की मृत्यु के पश्चात् दस वर्षों (ई. 1947) तक मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक एवं राजनीतिक उपन्यासों का बोलबाला रहा, परंतु किसी रचनाकार ने ग्रामीण जनजीवन को आधार बनाकर

---

१. जमनिया का बाबा-नागार्जुन, पृ. 101

उपन्यास की रचना नहीं की। प्रेमचन्द की परम्परा और उनके ग्रामीण पात्र लुप्तप्राय होते गए। "नागार्जुन स्वतन्त्र भारत के प्रथम उपन्यासकार हैं, जिन्होंने प्रेमचन्द की औपन्यासिक परम्परा को नये आयाम देकर आगे बढ़ाया।"[१] नागार्जुन प्रेमचन्द परवर्ती लेखकों में ऐसे लेखक हैं, जिनका बचपन प्रेमचन्द की तरह गाँव की धूल-कीचड़ में, खेतों-अमराइयों में बीता है। दोनों देशज मिट्टी से उपजे कथाकार हैं। किन्तु जहाँ प्रेमचन्द के चरित्र प्राय: टूटते हैं, नागार्जुन के चरित्र निरंतर अदम्य, उत्साह, साहस के साथ संघर्ष करते हैं और विजयी भी होते हैं। नागार्जुन के रचनाकाल तक आते-आते सुधारवादी और हृदय परिवर्तनवादी नुस्खों की अव्यवहारिकता के बारे में किसी सन्देह की गुंजाइश बाकी नहीं रही थी, अतएव उनकी रचनाएँ इस कमजोरी से मुक्त प्रतीत होती है। यही कारण है कि उनके उपन्यासों के पात्र न तो किसी सदन या आश्रम में कोई झूठी तसल्ली तलाश करते हुए दिखाई पड़ते हैं और न प्रेमचन्द के होरी की तरह, इच्छित और वास्तविक संसार के बीच अनुल्लंघनीय अंतराल के बोध से टूटकर अपने पीछे एक घने, अटूट, अंधकार की एहसास ही छोड़ जाते हैं।

साहित्यिक स्तर पर नागार्जुन प्रगतिशील आंदोलन में एक निश्चित विचारधारा से जुड़े लोगों के बीच प्रमुख रूप में अधिक सक्रिय रहे हैं। मार्क्सवादी सिद्धांतों में इनकी दृढ़ आस्था है। मार्क्सवाद के अनुसार विचारधारा का वर्गीय आधार होता है और प्रत्येक लेखक और कथाकार अपने सृजनात्मक कार्यों में जाने-अनजाने में किसी एक सामाजिक वर्ग के ही हितों की रक्षा और अभिव्यक्ति करता है, क्योंकि प्रत्येक वर्ग वास्तविकता को अपने वर्ग-दृष्टिकोण से देखता है। "नागार्जुन का मिथिला के ग्रामीण जीवन से निकट का परिचय है। उन्होंने निम्न तथा मध्यवर्ग की जनता को केवल सामाजिक और आर्थिक संघर्षों में घुटते हुए देखा ही नहीं है वरन् स्वयं भी उन्हीं संघर्षों को झेला है।"[२] यही कारण है कि नागार्जुन समाज के सभी शोषित-पीड़ित, गरीब-किसान, मजदूर आदि सर्वहारा वर्ग के साथ पूरी सहानुभूति रखते हैं और इसलिए नागार्जुन अपने समाज की वास्तविकता को अपने वर्गीय दृष्टिकोण, सर्वहारा के दृष्टिकोण से देखते हैं।

प्रगतिशील कथाकार होने के कारण नागार्जुन विभिन्न प्रकार के यथार्थों को व्यक्त करने के लिए विभिन्न वर्गों के चरित्रों की सृष्टि करते हैं, इनमें व्यक्ति और प्रतिनिधि चरित्र दोनों हैं लेकिन उन्होंने प्रतिनिधि चरित्र को ही अधिक महत्व दिया है। उनके प्रतिनिधि चरित्र गढ़े हुए और काल्पनिक नहीं है, वे जीवन-जगत से लिए गए हैं तथा कथा में अपनी वर्गीय विशेषताओं के साथ उपस्थित होते हैं। प्रतिनिधि चरित्रों के साथ नागार्जुन की पूर्ण सहानुभूति ही नहीं दृढ़ आस्था भी है। इसलिए वे समाज के नवनिर्माण का दायित्व इन्हीं प्रतिनिधि चरित्रों को सौंपते हैं।

प्रगतिशील कथाकार होने के कारण नागार्जुन के उपन्यासों में व्याप्त जीवन-दर्शन समाजवादी

---

१. नागार्जुन की सामाजिक चेतना - प्रो॰ प्रणय, पृ. 83

२. हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग - मंजुलता सिंह, पृ. 344

चेतना के अधिक निकट है। परस्पर समानता स्थापित करना, समाज के सभी वर्गों को विकास के समान अवसर प्राप्त होना, शोषण एवं वर्ग-वैषम्य का अंत करना ही इनके उपन्यासों का मूल स्वर है। ''नागार्जुन उपन्यास और कविता में एक ही जमीन पर खड़े नजर आते हैं। वह जमीन है अपने समय के यथार्थ से साक्षात्कार की जमीन। चाहे बुद्ध जैसा इतिहास पुरूष का चरित्र हो, या पाषाणी की त्रासदी हो, या बर्तोल्त ब्रेख्त की आधुनिक प्रगतिशील जमीन हो, नागार्जुन की आँखें लगातार यथार्थ को कसौटी पर कसती है, उस यथार्थ का साक्षात्कार करते हुए बिडम्बनाओं पर टिप्पणी जड़ती हैं।''[१]

नागार्जुन ने उपन्यासों का कैनवस ही गरीब किसान, खेतिहर, मजदूर और असहाय नारी के जीवन संघर्ष से उठाए हैं। उनका यथार्थवादी लेखन राष्ट्रीयता और सामाजिक नव-निर्माण के लिए आकुल रहता है। वह लेखन को अपना हथियार बनाते हैं। सिर्फ शोषण, दमन का जिक्र भर वे नहीं करते बल्कि उसके समूल नाश के लिए भी प्रेरित करते हैं। अंधविश्वास, रूढ़ियों और पाखंड के चक्र में फँसे ग्रामों को नागार्जुन मुक्ति दिलाना चाहते हैं। व्यभिचार और तस्करी के अड्डे बने मठों में रहनेवाले महंथों का वे पर्दाफाश करना चाहते हैं और उनसे जन-सामान्य को सचेत रहने का आग्रह करते हैं। साथ ही उन्होंने भूत-प्रेत, शकुन-अपशकुन, बलि-प्रथा, जंत्र-मंत्र, गुरूदीक्षा, पितर दान आदि लोकाचार का अंकन करते हुए उनकी निस्सारता पर जोर दिया है। पीड़ितों और शोषितों के प्रति संवेदना उनकी विचारधारा का उद्‌गम है। किसानों को दुख-आतंक की जिन्दगी से मुक्ति दिलाने के लिए वे संघर्ष का नारा देते हैं। नागार्जुन किसी समस्या के समाधान हेतु किसी तीसरी शक्ति में विश्वास नहीं करते बल्कि जो लोग समस्याग्रस्त हैं, उनके समूह और संगठन के द्वारा समाधान हेतु संघर्ष करने की प्रेरणा देते हैं।

नागार्जुन के उपन्यास-साहित्य की कथाभूमि ग्रामांचल होने के कारण उन्होंने गाँव के निम्नवर्गीय पात्रों को स्थान देकर उनकी शोषण करनेवाली ताकतों का यथार्थ चित्रण भी इस प्रकार किया है कि उनकी कलई पाठक के सामने अपने आप उभर पड़ता है। उन प्रगतिशील हिन्दी कथाकारों में नागार्जुन का महत्व सर्वोपरी है, जिन्होंने जनता के इस संघर्ष को अपने देश की माटी से जोड़ने की कोशिश की और सामान्य लोगों के सामान्य दुख-दर्दों को प्रभावशाली भाषा में अभिव्यक्ति की। उनकी इस सफलता का एकमात्र कारण है कि उनके पात्रों और परिवेश का परिचय सतही और किताबी नहीं है। ग्राम्य-जीवन उनका देखा और परिस्थितियाँ भोगी हुई हैं। इसीलिए उनके उपन्यास में आये पात्र सहज और स्वाभाविक रूप से विकसित हुए हैं। ''उनके पात्रों के जीवन-दर्शन का रूप वातावरण के संघर्ष से सजता-संवरता है और तब आवश्यकतानुसार पात्र सक्रिय या निष्क्रिय स्वरूप धारण करते हैं।''[२]

---

१. नागार्जुन : एक लंबी जिरह - विष्णुचन्द्र शर्मा, पृ. 80

२. नागार्जुन का उपन्यास साहित्य : समसामयिक संदर्भ - डॉ॰ सुरेन्द्र कुमार यादव, पृ. 19

नागार्जुन के प्रत्येक उपन्यास भिन्न-भिन्न समस्याओं को लेकर रचित हैं। उनके पात्र लाचार और बेवश नहीं बल्कि अपनी हक की लड़ाई खुद लड़ने के लिए प्रतिबद्ध होते हैं। पुरूषों के चंगुल में फँसी नारकीय जीवन व्यतीत करने को मजबूर नारियाँ भी अपनी मुक्ति की प्रयास करती हैं। नागार्जुन ने अपने सामाजिक परिवेश में स्त्रियों की जो दुर्दशा देखी, उसका मार्मिक चित्रण अपने उपन्यासों में किया है। "नागार्जुन की सबसे बड़ी उपलब्धि ही यह है कि उन्होंने साधारण जनता के अतिसाधारण परिवेश में से ही संघर्ष के मुद्दों की तलाश की और उसमें उस क्रांतिकारी चेतना की ज्योति जगायी जिसका इस पूरे दौर के साहित्य में बड़ा करूण प्रभाव दिखाई पड़ता है।"[१]

---

१. नागार्जुन का गद्य साहित्य - डॉ॰ आशुतोष राय, पृ. 113-114

पंचम अध्याय

उपसंहार

नागार्जुन हिन्दी साहित्य में एक यशस्वी कथाकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं। प्रेमचन्द की परम्परा को नये आयाम देकर आगे बढ़ाने वाले नागार्जुन स्वतंत्र भारत के प्रथम उपन्यासकार हैं। इन्होंने हिन्दी साहित्य को अपनी रचनाओं से असीम ऊर्जा एवं शक्ति प्रदान की है। बचपन से ही संघर्षरत, घुमक्कड़ और फकीराना ठाठ के इस शीर्षस्थ रचनाकार ने किसान मजदूरों के हितों की रक्षा के लिए संघर्ष किया। इस सिलसिले में कई बार वे जेल भी गए। नागार्जुन प्रगतिशील रचनाकार हैं। मार्क्सवादी सिद्धान्तो में इनकी दृढ़ आस्था है। इन्होंने निम्न तथा मध्यवर्ग की जनता को केवल सामाजिक और आर्थिक संघर्षों में घुटते हुए ही नहीं देखा है, वरन् उन संघर्षों को स्वयं झेला भी है। इसलिए वे समाज के सभी शोषित-पीड़ित, गरीब किसान-मजदूर आदि सर्वहारा वर्ग के साथ पूरी सहानुभूति रखते हैं। अपने वर्गीय चरित्रों को चेतना सम्पन्न बनाने की कोशिश करते हैं। इस कोशिश में उन्हें काफी सफलता भी मिली है।

नागार्जुन के उपन्यासों की पृष्ठभूमि में उनके पूर्ववर्ती रचनाकार का प्रमुख हाथ रहा है। भारत में अंग्रेजों की शोषण नीति ने जनता को हताश ही नहीं किया बल्कि उनकी रीढ़ की हड्डी ही तोड़कर रख दिया। अंग्रेजों की रवैया से क्षुब्ध होकर जनता में आक्रोश बढ़ने लगा और एक ऐसा दल सामने उभरकर आया, जो भारत को स्वतंत्र कराना चाहता था। स्वतंत्रता तो प्राप्त हुई पर लोगों को राजनैतिक आजादी ही मिली, आर्थिक नहीं। स्वतंत्रता के बाद की भारतीय सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक परिस्थिति और भी भयावह हो गई। लोगों का मोह भंग हो गया। अपने ही लोगों द्वारा जनता का शोषण और उन पर अत्याचार होने लगा। ऐसी स्थिति में चेतना सम्पन्न साहित्यकारों ने अपनी लेखनी से आवाज बुलंद करना शुरू किया। शोषित वर्गों में चेतना का संचार करने का प्रयास किया। यह प्रयास प्रेमचन्द से शुरू हुई और उसका उत्तरोत्तर विकास नागार्जुन के रचनाओं में अधिक हुआ।

राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि विभिन्न क्षेत्रों में आई विकृतियों ने किस प्रकार सामान्य जनजीवन को पंगु बना दिया है- नागार्जुन के उपन्यासों में इसका यथार्थ चित्रण हुआ है। गरीबी, अन्याय, शोषण, अशिक्षा, भूख, भ्रष्टाचार, विधवा-विवाह, अनमेल-विवाह, दहेज-प्रथा

आदि समस्याओं का चित्रण नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में किया है। उन्होंने 'बलचनमा', 'बाबा बटेसरनाथ', 'वरूण के बेटे' और 'दुखमोचन' में निम्नवर्ग के अभावों के साथ संघर्षों का भी सजीवता के साथ चित्रण किया है।

नागार्जुन ने अपने उपन्यासों के माध्यम से अंधविश्वास, कुसंस्कार, कुरीतियों, पाखण्ड और रूढ़ियों को ढोते हुए गाँवों को मुक्ति दिलाने का प्रयास किया है। उन्होंने रतिनाथ की चाची, बाबा बटेसरनाथ, जमनिया का बाबा, दुखमोचन, नई पौध, उग्रतारा आदि उपन्यासों में सामाजिक कुरीतियों का घोर-विरोध किया है। उनका मानना है कि धार्मिक अंधविश्वासों, कुसंस्कारों एवं सामाजिक कुरीतियों से मुक्ति पाने के बाद ही जन-कल्याणकारी समाज का निर्माण हो सकता है। उन्होंने अपने औपन्यासिक पात्रों को युगीन-चेतना से सम्पन्न कर दिया है। वे अपने पात्रों को स्वावलंबी बनाना चाहते हैं ताकि इन्हें अपनी समस्याओं के समाधान में परमुखापेक्षी न होना पड़े। नागार्जुन किसी तीसरी शक्ति में विश्वास नहीं करते। 'रतिनाथ की चाची' का ताराचरण और जयकिशोर प्रगतिशील विचारों के समर्थक पात्र हैं। 'वरूण के बेटे' उपन्यास का मोहन माझी चेतनासम्पन्न पात्र है जो मछुओं में चेतना का संचार करता है। 'नई पौध' का दिगम्बर और वाचस्पति झा मध्यवर्ग के शिक्षित युवक हैं जो सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना फैलाते हैं। प्रगतिशील विचारों से लैस दुखमोचन बदलते जमाने के अनुसार लोगों में नई चेतना का संचार करने का प्रयास करता है। कामेश्वर नई चेतना का प्रतीक है। अत: नागार्जुन के औपन्यासिक पात्रों में पौरूष, उत्साह और दृढ़ प्रतिज्ञा है, जो समाज-सुधार की भावना से प्रेरित हैं। वे अपने कंधों पर समाज के नव-निर्माण का दायित्व वहन करते हैं। वे टूट सकते हैं, झुकना नहीं जानते।

भारतीय समाज में विधवा नारी की समस्या कोई नई समस्या नहीं है। भारतीय नवजागरण काल में समाज सुधारकों द्वारा विधवा-प्रथा, अनमेल-विवाह, बाल-विवाह तथा सती-प्रथा जैसी सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए काफी प्रयत्न किए गए। हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में प्रगतिशील विचारों वाले उपन्यासकारों ने समाज की इस बीमार नब्ज पर अंगुली रखी। इन उपन्यासकारों में प्रेमचन्द के बाद नागार्जुन सबसे अग्रणी हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों में नारी से संबंधित विभिन्न समस्याओं को उठाते हुए उसका समाधान भी प्रस्तुत किया है।

नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में नारी व्यक्तित्व के विभिन्न पक्ष पर प्रकाश डाला है। इनके नारियों में परम्परागत एवं आधुनिक प्रवृत्तिओं का अद्‌भुत समन्वय देखने को मिलता है। रूढ़िवादी होने के बावजूद इनकी कुछ नारियाँ आधुनिक विचारों से लैस हैं। नागार्जुन की नारियाँ समाज में फैली बुराइयों का विरोध करती हैं। वह अपने ऊपर होने वाले अन्याय और शोषण के प्रति विद्रोही तेवर अख्तियार करती हैं। नागार्जुन नारियों को अबला नहीं सबला के रूप में देखना चाहते हैं।

नागार्जुन की नारी के प्रति पूर्ण सहानुभूति है। उनका विचार है कि पुरूष और नारी दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक के बिना दूसरा अधूरा है। एक को छोड़कर दूसरे का जीवन

कभी चल ही नहीं सकता।

नागार्जुन के उपन्यासों में कथा-संयोजना सहज और वास्तविक धरातल पर हुई है। वे अपने आस-पास की वास्तविकताओं और परिवेश से ही कथानक को चुनते हैं। उनके उपन्यासों की कथा-संकलन जटिल न होकर सहज, सरल और सामाजिक है। भाषा के स्तर पर नागार्जुन ने नवीन दृष्टिकोण अपनाया है। उसकी कृत्तिमता और जड़ता को तोड़कर उसके सहज प्रयोग पर उन्होंने अधिक बल दिया है। इन्होंने अपने उपन्यासों में उच्चवर्ग, निम्नवर्ग, ग्रामीण नागरिक, स्त्री-पुरूष के बौद्धिक, मानसिक पार्थक्य को अपने भाषा-प्रयोग में बखूबी व्यंजित किया है। नागार्जुन का भाषा-कोश अत्यंत समृद्ध है। इनके उपन्यासों की भाषा यथार्थ जीवन-संदर्भों की भाषा है। उन्होंने अपने उपन्यासों में गाँव के अछूते शब्द तथा ग्रामीण भाषा-शैली का उपयोग किया है। उपन्यासों में नागार्जुन ने तत्सम, तद्भव, ग्रामीण, अरबी-फारसी, अंग्रेजी, अंग्रेजी के तद्भव रूपों एवं बंगला के शब्दों का बखूबी प्रयोग किया है। लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग कर उन्होंने भाषा को और भी अधिक सुगठित बनाया है। उपन्यासों में लोक कथात्मक, वर्णन प्रधान एवं आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग मिलता है। अपनी बनावट और बुनावट के लिए नागार्जुन की भाषा-शैली सराहनीय है। उनकी भाषा-शैली चरित्रों की नियति और मानसिकता को उघाड़ने तथा व्यक्त करने में सफलता अर्जित की है।

उपन्यासों में उठायी गई समस्याओं, अन्याय, शोषण, कुरीतियों के प्रति विरोध एवं विद्रोह की भावना तथा बिना किसी लाग-लपेट के बात कहने की साहस के कारण नागार्जुन के उपन्यास वर्तमान सन्दर्भ में आज भी प्रासंगिक बने हुए हैं। इनके उपन्यासों में चित्रित समस्याएँ मिथिला के परिवेश के आधार पर होने पर भी सभी समस्याएँ राष्ट्रीय समस्याएँ बन जाती हैं। नागार्जुन किसी समस्या के समाधान हेतु किसी तीसरी शक्ति में विश्वास नहीं करते, बल्कि जो लोग समस्याग्रस्त हैं, उनके समूह और संगठन के द्वारा समाधान हेतु संघर्ष करने की प्रेरणा देते हैं। यह नागार्जुन के उपन्यासों की सबसे बड़ी उपलब्धि है। अतः नागार्जुन के उपन्यासों में वर्ग-चेतना का पूर्ण प्रतिफलन हुआ है। उनके मध्यवर्गीय पात्र निम्नवर्ग के पात्रों में चेतना का संचार करते दिखाई पड़ते हैं।

आधार ग्रन्थ एवं सहायक-संदर्भ ग्रन्थों की सूची

आधार ग्रन्थ

क्र. सं.	लेखक का नाम	पुस्तक का नाम	प्रकाशक / प्रकाशन संस्था का नाम	संस्करण
1	नागार्जुन	रतिनाथ की चाची	वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली	द्वितीय-1996
2	नागार्जुन	बलचनमा	वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली	द्वितीय-2002
3	नागार्जुन	बाबा बटेसरनाथ	राजकमल प्रकाशन प्रा॰ लि॰, 1-वी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली	पहला पेपरबैक्स-2006
4	नागार्जुन	दुखमोचन	राजकमल प्रकाशन प्रा॰ लि॰, 1-वी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली	पहली आवृत्ति-2007
5	नागार्जुन	वरूण के बेटे	वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली	सं- 2007
6	नागार्जुन	नई पौध	राजकमल प्रकाशन प्रा॰ लि॰, 1-वी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली	पहला -2007
7	नागार्जुन	कुंभीपाक	वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली	सं- 1998
8	नागार्जुन	अभिनन्दन	वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली	द्वितीय- 1998
9	नागार्जुन	उग्रतारा	राजकमल प्रकाशन प्रा॰ लि॰, 1-वी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली	द्वितीय -2007
10	नागार्जुन	जमनिया का बाबा	वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली	द्वितीय- 1991
11	नागार्जुन	गरीबदास	वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली	द्वितीय- 2006

सहायक-संदर्भ ग्रन्थों की सूची

क्र. सं.	लेखक का नाम	पुस्तक का नाम	प्रकाशक / प्रकाशन संस्था का नाम	संस्करण
1	डॉ॰ आशुतोष राय	नागार्जुन का गद्य साहित्य	लोकभारती प्रकाशन, दरबारी बिल्डिंग, एम. जी. रोड, इलाहाबाद,	प्रथम-2006
2	डॉ॰ इन्द्रमोहन कुमार सिन्हा	प्रेमचन्द युगीन भारतीय समाज	बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना	प्रथम - 1974
3	डॉ॰ इन्द्रनाथ मदान	प्रेमचन्द : एक विवेचन	राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा॰ लि॰, 2/58, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली	1998
4	प्रो॰ गोपाल राय	हिन्दी उपन्यास का इतिहास	राजकमल प्रकाशन प्रा॰ लि॰, नई दिल्ली	प्रथम- 2002
5	तेज सिंह	नागार्जुन का कथा साहित्य	पराग प्रकाशन, दिल्ली	प्रथम -1993
6	(सं) डॉ॰ धीरेन्द्र वर्मा	हिन्दी साहित्य कोश	ज्ञानमंडल लिमिटेड, बनाारस	प्रथम, वि. सं. - 2015
7	डॉ॰ प्रकाश चन्द्र गुप्त	आज का हिन्दी साहित्य	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली	1966
8	डॉ॰ प्रकाश चन्द्र भट्ट	नागार्जुन : जीवन और साहित्य	सेवासदन प्रकाशन, मंदसौर (मध्य प्रदेश)	प्रथम - 1974
9	डॉ॰ प्रभाकर माचवे	नागार्जुन	राजपाल एंड संस, दिल्ली	प्रथम - 1977
10	डॉ॰ पृथा रानी कर	प्रेमचन्द तथा शरत्चन्द्र के कथा-साहित्य के नारी पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन	ए. के. कर	2001
11	बच्चन सिंह	हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास	राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा॰ लि॰, 2/38, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली	प्रथम - 1996 पहली आवृत्ति - 1997
12	बाबूराम गुप्त	उपन्यासकार नागार्जुन	श्याम प्रकाशन, जयपुर	प्रथम - 1985
13	मंजुलता सिंह	हिन्दी उपन्यासों में मध्यवर्ग	आर्य बुक डिपो, 30, नाईवाला, करौलबाग, नई दिल्ली	1971
14	यशपाल	मार्क्सवाद	विप्लव कार्यालय, लखनऊ	1954
15	डॉ॰ यश गुलाटी	प्रतिनिधि हिन्दी उपन्यास (भाग पहला)	हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़	प्रथम - 1989

क्र. सं.	लेखक का नाम	पुस्तक का नाम	प्रकाशक / प्रकाशन संस्था का नाम	संस्करण
16	राजनाथ शर्मा	हिन्दी के कवि और लेखक	विनोद पुस्तक मन्दिर, रांगेय राघव मार्ग, आगरा- 2	तृतीय - 1979
17	(सं.) डॉ॰ राजेश्वर गुरू	गोदान	राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा॰ लि॰	प्रथम - 1976
18	डॉ॰ रामकली सराफ	नयी कहानी : विघटन और विसंगति	संजय बुक सेंटर, गोलघर, वाराणसी	प्रथम - 1988
19	राम दरश मिश्र	हिन्दी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा	राजकमल प्रकाशन प्रा॰ लि॰, नई दिल्ली	पुनर्मुद्रित - 1992
20	(सं.) राम निहाल गुंजन	नागार्जुन : रचना प्रसंग और दृष्टि	नीलाभ प्रकाशन, 15-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद	2007
21	डॉ॰ विजय बहादुर सिंह	नागार्जुन का रचना संसार	संभावना प्रकाशन, हापुड़	प्रथम - 1982
22	विद्या सिन्हा	आधुनिक परिदृश्य : आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली	प्रथम - 2001
23	विष्णुचन्द्र शर्मा	नागार्जुन : एक लम्बी जिरह	वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली	प्रथम - 2001
24	वेद प्रकाश अमिताभ	हिन्दी के आंचलिक उपन्यासों में मूल्य संक्रमण	वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली	प्रथम - 1997
25	डॉ॰ शशिभूषण सिंहल	हिन्दी उपन्यास : बदलते संदर्भ	प्रवीण प्रकाशन, महरौली, नई दिल्ली	प्रथम - 1979
26	डॉ॰ शिव कुमार शर्मा	हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ	अशोक प्रकाशन, नई सड़क, नई दिल्ली	सत्रहवाँ - 2001
27	शोभाकांत	नागार्जुन : मेरे बाबूजी	वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली	प्रथम - 1990
28	(सं) शोभाकांत मिश्र	नागार्जुन की चुनी हुई रचनाएँ (1, 2, 3)	वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली	द्वितीय - 1999
29	सरिता राय	उपन्यासकार प्रेमचन्द की सामाजिक चिन्ता	वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली	प्रथम - 1996
30	डॉ॰ सुरेन्द्रकुमार यादव	नागार्जुन का उपन्यास साहित्य : समसामयिक सन्दर्भ	वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली	प्रथम - 2001
31	डॉ॰ सुरेश बत्रा	हिन्दी उपन्यासों में नारी अस्मिता	रचना प्रकाशन, जयपुर	1989
32	हीरेन गोहाँई	समाज आरू समालोचना	लयार्स बुक स्टल, पानबाजार, गुवाहाटी	फरवरी - 1991

क्र. सं.	लेखक का नाम	पुस्तक का नाम	प्रकाशक / प्रकाशन संस्था का नाम	संस्करण
33	D. N. Jena & M. K. Mahapatra	Social Change : Themes and Perspective	Kalyani Publication, Ludhiana	1993
34	Sachdeva and Gupta	A Simple Study of Political Thought	Ajanta Publication - 27-68. Gali Arya Samaj, Bazar Sitaram, Delhi	1948

पत्र एवं पत्रिकाएँ

1. उद्‌भावना : अंक 51-52 (नागार्जुन विशेषांक)
2. साक्षात्कार : नवंबर 98 (नागार्जुन विशेषांक)
3. समकालीन सृजन - संयुक्तांक, जुलाई-दिसम्बर, 1989।